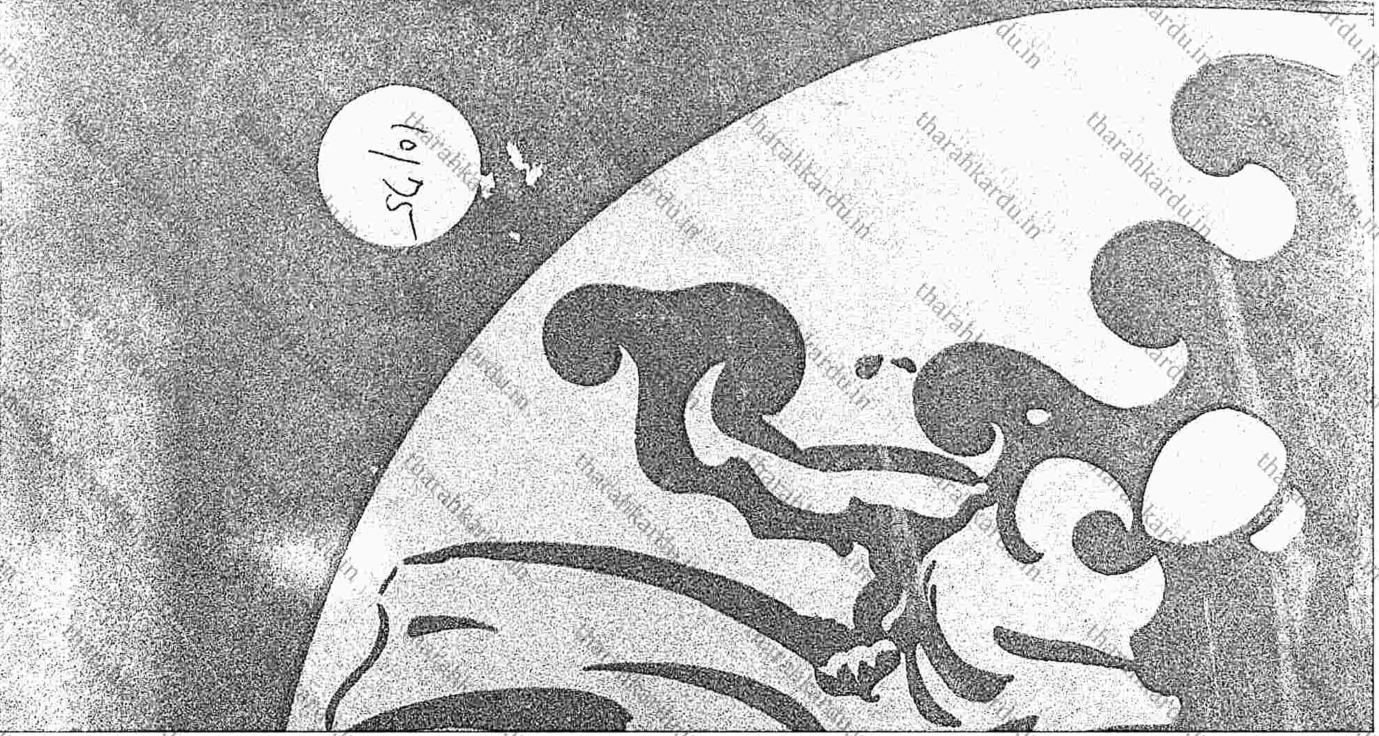
10/75

tharahkardu.in

सोमसी

भाषा विशेषांक

हिमाचल कला–संस्कृति–भाषा अकादमी का त्रैमासिक मुख-पत्र

वर्ष १ | अक्तूबर, १९७५ | अंक ४

प्रबन्धक सम्पादक
एच० सी० पराशर

सम्पादक
डा० बंशी राम शर्मा

परामर्श मण्डल

1. आचार्य दिवाकर दत्त शर्मा
2. श्री खेम राज गुप्त
3. श्री हरी राम जसटा
4. श्री मौलू राम ठाकुर

सहयोगी
सरोज शर्मा

आवरण
तिलक राज

प्राप्ति स्थान :

हिमाचल कला-संस्कृति–भाषा अकादमी, परिमहल, शिमला-१७१००९

tharahkardu.in

सोमसी

वर्ष 1 अंक 4

जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्तूबर में प्रकाश्य।

लेखकों के विचारों तथा दिए गए तथ्यों से सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं।

प्रकाशित रचनाओं को पूर्ण अथवा आंशिक रूप में उद्धृत करने के लिए सचिव, हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी, परिमहल शिमला-1 की अनुमति अनिवार्य है।

वार्षिक चंदा—१२ रु०
एक प्रति—३ रु०

सोमसी, अक्तूबर, 1975

भाषा—विशेषांक

विषयानुक्रमणिका

क्रमांक	लेख	लेखक	पृष्ठ
	सम्पादकीय		(i)
1.	पहाड़ी भाषा की उपभाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन	मौलूराम ठाकुर	1
2.	किन्नौरी बोलियां	ठाकुर सेन नेगी	7
3.	भर्तृहरि का शब्द-शास्त्रीय ग्रन्थ: वाक्यपदीय	डा० शान्ति भिक्षु शास्त्री	17
4.	कहलूरी उपभाषा में संस्कृत के शब्द	आचार्य शुकदेव शर्मा	22
5.	चम्बा के साहो क्षेत्र की कृषि सम्बन्धी शब्दावली	हरि प्रसाद सुमन	32
6.	लाहुल की किराती-कनाशी बोलियां	के० अंगरूप लाहुली	37
7.	बघाटी के कृषि सम्बन्धी शब्दों का अध्ययन	भीमदत्त काले	44
8.	ग्रियर्सन का पहाड़ी भाषाओं के सम्बन्ध में मत : एक विश्लेषण	डा० वंशीराम शर्मा	52
9.	कृषि परक मण्डयाली शब्दावली	डा० कांशी राम पठानिया	54
10.	महासुवी की शब्द-सम्पत्ति	हरिराम जसटा	59
11.	भाषा का स्वभाव और पहाड़ी भाषा जनपद	शशी रानी शर्मा	61
12.	शैली-विज्ञान और पहाड़ी काव्य-भाषा	आशा गोयल	66
13.	हमारा सूक्ति संसार	सरोज शर्मा	72
14.	विविधा—पलभर साथ एक साये का	किशोरीलाल वैद्य	74
15.	अकादमी की गतिविधियां		77
16.	हिमाचल प्रदेश के मन्दिरों की शैली तथा सूची	कु० त्रिभुवन रेखा राठौर	78
17.	पुस्तक समीक्षा	के० सी० शर्मा	102
18.	पृष्ठ भूमि		104

tharahkardu.in

सम्पादकीय

हमारे देश में पूर्ववैदिक काल से ही विभिन्न संस्कृतियों तथा भाषा-समूहों का अस्तित्व रहा है। सैन्धव संस्कृति, जो शिमला की पहाड़ियों के समीप रोपड़-नालागढ़ से लेकर अरब सागर तक के क्षेत्र तक फैली हुई थी, की गुत्थी को अभी तक भी सुलझाया नहीं जा सका है। भाषा-विज्ञान, पुरातत्व तथा नृतत्वशास्त्रीय अध्ययनों के आधार पर कहा जा सकता है कि यह मूलतः द्रविड़ संस्कृति थी। मोहनजोदड़ो व हड़प्पा की खुदाइयों में प्राप्त लेखों की लिपि को यद्यपि अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है परन्तु विद्वानों के अनुसार इस क्षेत्र में मूल आस्ट्रेलिद (निषाद), भूमध्य-सागरीय (द्रविड़) तथा मंगोलिद (किरात) जातियों के लोगों के अस्थिपिंजर मिले हैं तथा बलोचिस्तान की ब्राहुई भाषा में द्रविड़ भाषा के केवल शब्द ही नहीं मिलते बल्कि मुहावरे भी बिखरे पड़े हैं। सांस्कृतिक अवशेषों के आधार पर द्रविड़ सभ्यता के साथ इसका सम्बन्ध बताया जाना केवल कपोल-कल्पना नहीं है। प्रश्न यह उठता है कि वर्तमान हिमाचल प्रदेश के शिवालिक-क्षेत्र में पनपने पर भी इस संस्कृति का पर्वतीय क्षेत्रों पर प्रभाव क्यों नहीं हुआ ? क्योंकि हिमालय क्षेत्र में प्रागैतिहासिक काल से प्रचलित रीति-रिवाजों तथा भाषा-बोलियों का भाषा-वैज्ञानिक तथा नृतत्वशास्त्रीय अध्ययन नहीं हुआ अतः विद्वानों का ध्यान इस ओर नहीं जा सका। ऋग्वेद (7.99.4 व 10.99.4) के अन्तर्गत जिस शृंगमुकुटधारी तथा त्रिमुखधारी दास का संकेत है, वह 'एक व्रात्य' है और निश्चय ही सिंधु घाटी का आदि शिव है। शिव का अनार्यत्व भाषावैज्ञानिक साक्ष्यों से भी प्रमाणित है। तमिल भाषा के 'शिवन्' तथा 'शेम्बू' शब्द 'शिव' और 'शम्भू' शब्दों के प्रारम्भिक रूप कहे जाते हैं परन्तु हिमालय के गर्भ में प्रचलित भाषाओं का 'शू' (देवता) शब्द भी इसके मूल में प्रतीत होता है। 'शू' का 'शिव' हो जाना भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से किस सीमा तक सम्भव है, निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है परन्तु शिव-पूजा का इन क्षेत्रों में प्रचलित होना तथा 'असुर देवताओं' यथा 'बाणासुर व हिडिम्बा (हिरमा)' की सन्तान का देवता होना और मन्दिरों में प्रागैतिहासिक काल से शिव-लिंगों की स्थापना निश्चित रूप से यह संकेत देते हैं कि सिन्धु सभ्यता का क्षेत्र हिमालय की पर्वतमालाओं तक फैला था। प्राचीन समय में ईरान में असुर सभ्यता थी और 'वरुण' आदि देवताओं की पूजा होती थी। ईराक की सुमेर सभ्यता जिसे संसार की प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक माना जाता है, में सुमेरी जाति को 'श' कहा जाता है। इसी के आधार पर काठियावाड़ का प्राचीन नाम 'सुराष्ट्र' बताया जाता है।

विद्वानों का दूसरा वर्ग हिमालय-क्षेत्र को आर्यों का आदि देश मानता है। 'आर्य' शब्द 'अर' धातु से व्युत्पन्न माना जाता है। 'अर' का अर्थ हल की नोक लिया जाता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि आर्य जाति कृषि प्रधान थी। वेदों में संस्कृति के लिए 'कृष्टि' शब्द का प्रयोग इस तथ्य की ओर स्पष्ट संकेत करता है कि 'कृषि' व 'संस्कृति' में अन्तर नहीं था। हमारी संस्कृति 'कृषि' के साथ सम्बद्ध रही है अतः यह कहा जा सकता है कि इस प्रदेश के विभिन्न जनपदों में प्रचलित कृषि-शब्दावली अति प्राचीन है। प्राचीन काल में संस्कृतियों में जो भी समन्वय स्थापित हुआ होगा उसका प्रभाव कृषि-शब्दावली पर भी पड़ा होगा। तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से **'सोमसी'** के इस भाषा-विशेषांक में प्रस्तुत भाषा सम्बन्धी सामग्री सुविज्ञ पाठकों के लिए चिन्तन के कुछ नए धरातल प्रस्तुत करती है। इस सामग्री के द्वारा हम केवल भाषा के क्षेत्र में ही नए शब्द नहीं पाते बल्कि सांस्कृतिक अध्ययन की दिशा में भी 'कुछ नया' प्राप्त करते हैं। हमारे सामने अध्ययन का एक विशाल क्षेत्र है अतः यह तो एक छोटा सा पग है जिसके आधार पर हम अपना मार्ग बना सकते हैं।

भाषा-विशेषांक की प्रतीक्षा में हमारे सहृदय पाठकों को जो असुविधा हुई उसका हमें पूर्ण आभास है परन्तु प्रकाशन सम्बन्धी कठिनाइयों को देखते हुए वे हमें विलम्ब के लिए क्षमा करेंगे, इस विश्वास के साथ यह अंक आपकी सेवा में प्रस्तुत है।

—बंशी राम शर्मा

पहाड़ी भाषा की उप-भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन

—मौलू राम ठाकुर

पहाड़ी भाषा की उप-भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन के लिए, सुविधा की दृष्टि से, समस्त पहाड़ी क्षेत्र को प्रथमतः दो उप-शाखाओं में बांटा जा सकता है— बाहरी उप-शाखा तथा भीतरी उप-शाखा। बाहरी उप-शाखा में मुख्यतः हमीरपुर, ऊना, चम्बा, कांगड़ा, बिलासपुर और मण्डी के ज़िले पड़ते हैं और भीतरी उप-शाखा में सिरमौर, सोलन, शिमला, कुल्लू के ज़िले, कांगड़ा का उत्तरी-पर्वतीय क्षेत्र जहां 'गादी' बोली जाती है तथा चम्बा का चुराही और पंगवाली के क्षेत्र शामिल हैं। इसी भीतरी उप-शाखा में उत्तर प्रदेश का जौनसर बावर तथा जम्मू कश्मीर का भद्रवाह क्षेत्र भी शामिल है जिन की बोलियां भी भाषायी दृष्टि से पहाड़ी भाषा के अन्तर्गत आती हैं। मूल रूप में दोनों उप-शाखाओं में वे सभी गुण विद्यमान हैं जो पहाड़ी की मुख्य विशेषताएं हैं और जिन के आधार पर पहाड़ी भाषा, भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से पड़ौसी भाषाओं से भिन्न और स्वतन्त्र है। फिर भी दोनों उप-शाखाओं की कुछ अपनी-अपनी विशिष्टताएं हैं जिन्हें निम्न रूप से अध्ययन के अधीन लाया जा सकता है:—

ध्वनि तत्व

पहाड़ी भाषा की प्रायः सभी बोलियों में आदि ह्रस्व स्वर के लुप्त होने की प्रवृति है, जैसे अंगूठा > गुठा, आज़ाद > ज़ाद, अंगीठी, > गीठी, अनाज > नाज आदि। पहले स्वर के लोप के कारण कई बार शब्द के मूल उच्चारण में विकार आ जाता है, यथा— उधार > धुआर, उठाना > ठुआणा, उदास > दुआस, आदि। परन्तु भीतरी पहाड़ी में जहां 'अ' को 'औ' में बदलने की प्रवृत्ति है वहां बाहरी पहाड़ी में यह प्रवृत्ति दिखाई नहीं देती (यहां 'औ' का उच्चारण ठीक हिन्दी 'औ' सा नहीं है। इस की ध्वनि 'ओ' और 'औ' के बीच में अंग्रेजी शब्द Block के '0' की भान्ति है। यहां केवल मुद्रण की कठिनाई से इसे 'औ' द्वारा दिखाया जा रहा है)। जैसे भीतरी पहाड़ी डौर बाहरी पहाड़ी डर, भीतरी पहाड़ी घौर बाहरी पहाड़ी घर, भीतरी पहाड़ी हौरा बाहरी पहाड़ी हरा, आदि। औ–प्रियता की भीतरी पहाड़ी की यह प्रवृत्ति कुछ बोलियों में अत्यधिक है। सिरमौरी, बघाटी और महासुई में अकारान्त पुल्लिग संज्ञाओं के विकारी रुप भी औकारान्त ही हो जाते हैं, यथा—देशौ रे वीर=देश के वीर, घौरी के माण्हू=घर के आदमी, खेचौ ले जाणा– खेत को जाना आदि। इस दृष्टि से महासुई का स्थान सर्वोपरि है, वहां आकारान्त शब्द भी औकारान्त हो जाते हैं– खाणौ, पीणौ, उठणौ, लिखणौ, आछौ आदि स्वर-ध्वनियों में पहाड़ी की एक विशिष्ट ध्वनि 'ए' का ह्रस्व रूप 'ऍ' है जैसे नेंड़, गभें, भेणा (बहिन), छैल छैल (सुन्दर–सुन्दर) आदि। इस दिशा में गादी और कुलुई में एक विशिष्टता यह है कि यह ध्वनि वहां केवल शब्दों के अन्त में प्राप्य है, आरम्भ और मध्य में प्रायः नहीं मिलती है।

जहां तक व्यंजन ध्वनियों का सम्बन्ध है भीतरी पहाड़ी में तालव्य च-वर्गीय ध्वनियों से भिन्न च्- वर्गीय ध्वनियां हैं। जौनसारी, सिरमौरी, महासुई, कुलुई, गादी, चुराही और पंगवाली में च, छ, ज, और झ, क्रमशः च, छ, ज और झ से बिल्कुल स्वतन्त्र ध्वनियां हैं। बाहरी पहाड़ी में ये स्वतन्त्र ध्वनियां नहीं हैं, यद्यपि मण्डियाली और चम्बयाली में ये संध्वनियों के रूप में सुनने में मिलती हैं। भीतरी-पहाड़ी में भी इनका उच्चारण स्थान सभी बोलियों में एक-समान नहीं हैं। कुलुई में च्-वर्गीय ध्वनियां वर्त्स्य हैं, अन्य बोलियों में ये दन्त्य लगती हैं। इसी तरह समस्त पहाड़ी क्षेत्र में तालव्य 'ल' और मूर्धन्य 'ल़' बिल्कुल पृथक पृथक स्वतन्त्र ध्वनियां हैं, जैसे 'गल' (गल-बात) परन्तु 'गल़' (गला), काली (काली माता) परन्तु काल़ी (काले रंग की) आदि।

दोनों उप-शाखाओं में 'ष' विद्यमान नहीं है। परन्तु जहां भीतरी पहाड़ी में 'श' और 'स' पूर्णतः सुरक्षित हैं, बाहरी उप-शाखा में 'श' को 'स' में बदलने की प्रवृत्ति है जैसे भीतरी उप-शाखा में शेर, शोभा, शाप (या श्राप), शक्कर, शरबत बाहरी उप-शाखा में क्रमशः सेर, सोभा, साप (या सराप) सक्कर, सरबत आदि। इस सम्बन्ध में सिरमौरी और महासुई प्रायः श-प्रिय बोलियां हैं। इन में 'स' को भी किंचित 'श' में बदलने की प्रवृत्ति है, जैसे सड़क को शड़क, सवारी को शवारी, ससुर को शौरा आदि।

संस्कृत 'त्र' का आदेश सभी बोलियों में समान रूप से नहीं हुआ है। बाहरी पहाड़ी में 'त्र' प्रायः 'त' में बदला है, यथा—क्षेत्र> खेत, मूत्र> मूत, पत्र> पत्ता आदि। परन्तु महासुई और सिरमौरी आदि में 'त्र' प्रायः 'च' में बदलता है- क्षेत्र> खेच, सं० त्रि> चोन त्राम्बा> चाम्बा आदि।

मध्य भारतीय आर्य भाषा के प्रारम्भिक काल में सरलीकरण की जो प्रवृत्ति चली थी, उस का प्रभाव दोनों उप-शाखाओं में भिन्न रूप से पड़ा है। भीतरी उप-शाखा में (बघाटी को छोड़ कर) संयुक्ताक्षर से पूर्व का ह्रस्व स्वर दीर्घ हो जाता है तथा साथ ही संयुक्ताक्षरों में से एक का लोप होकर केवल एक व्यंजन रहता है, जैसे—'सप्त' से 'सौत' 'अष्ठ से 'औठ' कण्टक' से 'कांडा', नग्न से 'नांगा', 'रुष्ट, से 'रूश' आदि । इसके विपरीत बाहरी पहाड़ी में पूर्व स्वर दीर्घ नहीं हुआ है तथा अक्षरों में से एक अक्षर का लोप हो गया है परन्तु लोप के स्थान पर दूसरा संयुयक्त अक्षर प्रायः द्वित्व हो गया है । यथा, सं० पृष्ठ > पिट्ठ, सं० कर्म कम्म, सं० मत्स> मच्छी सं० अद्य> अज्ज आदि। द्वित्त्व अक्षरों की स्थिति में बघाटी बोली अपने आप में अपवाद है । इस में दीर्घ स्वर के बाद भी द्वित्त्व अक्षरों का प्रयोग मिलता है –'साथी' के लिए 'सात्थी' हाथ' के लिए 'हात्थ', तेस्सी पांय' (तिस पर, उस पर), 'तुम्मो दा' (तुम को) आदि । ह्रस्व स्वर के पश्चात् द्वित्व आना पहाड़ी की बाहरी उप-शाखा का स्वभाव है, परन्तु बघाटी में, कम से कम लेखकों के प्रयोग में, दीर्घ के बाद भी द्वित्त्व अक्षरों का बाहुल्य है।

पहाड़ी भाषा में श्रुति का विशेष महत्त्व है। 'य' प्रायः सभी उप-भाषाओं में आरम्भ में 'ज' में तथा मध्य और अन्त में 'इआ' में बदलता है। इसी तरह 'व' शब्दों के आरम्भ में 'ब' में तथा मध्य तथा अन्त में प्रायः 'उआ' में बदलता है। यहां तक किसी बोली

में कोई अपवाद नहीं हैं; परन्तु पहाड़ी भाषा में 'र' तथा 'ल' की भी श्रुति व्यापक है। यह प्रवृत्ति इसे वैदिक संस्कृत से मिली है, क्योंकि उसमें भी इन की स्थिति स्वर और व्यंजन के बीच की थी। यही कारण है कि य, र, ल, व को अन्तस्थ या अर्ध=स्वर श्रेणी में रखा जाता है। ऊपर लिखा जा चुका है कि पहाड़ी में 'ल' और 'ल़' अलग अलग स्वतन्त्र ध्वनियां हैं परन्तु अधिकतया ये क्रमिक रूप से लोप की ओर अग्रसर होने की प्रवृत्ति के अधिक परिचायक हैं। कांगड़ी में 'ल' वर्ण 'ल़' में बदलता है। मण्डी–सुकेत तथा सतलुज के आस पास 'ल़' पुनः 'ड़' में परिणत होता है और जौनसारी, सिरमौरी, महासुई, कुलुई तथा भद्रवाही में यह लुप्त हो जाता है या स्वर में बदलता है। इस तरह ल> ल़> ड़> अ का क्रमिक परिर्वतन पहाड़ी भाषा की विशिष्टता है, जैसे–हिन्दी 'काला– कांगड़ी 'काल़ा'– मण्डियाली 'काड़ा'> महासुई कुलुई आदि 'काआ', हि0 आलू> कां0 आल़ू> म0 आड़ू-कु0 म0–आऊं, हि0 पाला> कां0 पाल़ा> मं0 पाड़ा> कु0 म0 पाआ आदि।

'र' की श्रुति के भी बड़े मनोरंजक उदाहरण मिलते हैं, जैसे सिरमौरी में 'जौ री रोटी'=जौइटी। भद्रवाही में 'र' की श्रुति तिब्बती प्रभाव के साथ मिलती है। तिब्बती में प्+र=प्र न हो कर 'ट' या कदरे 'ट्र' होता है। इसी तरह फ्+र=फ्र न हो कर 'ठ' या 'ठ्र', ब+र=ब्र न हो कर 'ड' या ड्र। यह प्रवृत्ति पहाड़ी की बोलियों में द्रष्टव्य है, उदाहरणार्थ –हिंदी 'भूख'> पंगवाली 'भ्रुख'> भद्रवाही 'ढलखो' हि0 भ्राता> कां0 भ्रा > भ0 ढ़लां; हि0 भालू> भ्रालू> ढ़लवू, संस्कृत व्याघ्र> कु0 ब्राघ> भ0 ढलाघ; हि0 भेड़> चु0 भ्रड़> भ0 ढलेड ; हि0 तीन> कु0 त्राई> भ0 टलाई आदि।

रूप तत्व

संज्ञाओं के विकारी रूप के सम्बन्ध में पहाड़ी में हिन्दी और पंजाबी से स्पष्ट भिन्नता है। पहाड़ी में अकारान्त पुलिंग शब्द एक वचन में भी विकारी रूप धारण करते हैं, यथा, घौरा ले <घर को, हाथी पांये > हाथ पर, बालका जो <बालक को, असां रे देसा रे बीर 'हमारे देश के वीर' आदि। कुलुई को छोड़ कर शेष पहाड़ी उप-भाषाओं में ऐसा विकरण इ-ईकारान्त और उ-ऊकारान्त प्रातिपदिकों में भी प्रचलित है, यथा साधुआ रा नां-साधु का नाम, टोपीया रा रंग 'टोपी का रंग'। कुलुई में इ-ई-उ-ऊकारान्त प्रातिपदिक हिन्दी की तरह रहते हैं।

स्त्रीवाचक शब्दों की स्थिति में बाहरी पहाड़ी में लगभग सभी तरह के प्रातिपदिकों के एक वचन और बहुवचन में अलग-अलग रूप बनते हैं––एक कताब––दस कताबां, इक कुड़ी–दस कुड़ियां; परन्तु भीतरी पहाड़ी में अकारान्त स्त्रीलिंग संज्ञाओं को छोड़ कर शेष सभी तरह के प्रातिपदिक एक वचन और बहुवचन में समान रहते हैं, जैसे एक शोहरी–दस शोहरी। इसी तरह बाहरी पहाड़ी में संज्ञा शब्दों के विकारी रूप एक वचन और बहुवचन में अलग-अलग रहते हैं। जैसे-'इक घोड़े जो' परन्तु 'पंज घोड़ेयां जो'; परन्तु भीतरी पहाड़ी में एक वचन और बहुवचन में समान रूप रहते हैं यथा–– घोड़े-खे या घोड़े ले का अर्थ 'घोड़े को' भी है और 'घोड़ों को' भी; 'हाथी पांथे' का अर्थ 'हाथी पर' या 'हाथियों पर' दोनों हो सकते हैं।

कारक

संज्ञाओं के विकारी रूप के बारे में ऊपर उल्लेख किया गया है। यहां विभिन्न कारक प्रत्ययों का वर्णन करना अपेक्षित है। पहाड़ी की विभिन्न बोलियों में कुछ एक कारक प्रत्ययों में समानता नहीं है।

सभी पहाड़ी बोलियों में कर्त्ता कारक के 'ने' के लिए 'ए' प्रत्यय है। यही एकारान्त रूप कर्त्ता कारक सविभक्तिमान है – घोड़े 'घोड़े ने', हाथीए 'हाथी ने, छोहटूए 'लड़के ने,' बावे 'बाप ने'। कांगड़ी, चम्बयाली, मण्डियाली, बिलासपुरी में कर्म कारक का मूल प्रत्यय 'जो' है, जो कभी कभी 'ओ' में भी बदलता है। परन्तु भीतरी पहाड़ी के कर्म-कारक प्रत्यय में समानता नहीं है । जौनसारी, सिरमौरी, बघाटी, निम्न महासुई में यह प्रत्यय 'खे' (को) है, ऊपरी महासुई में 'ले' कुलुई में 'बे' गादी में 'बो' चुराही में 'नी' तथा भटियाली और नूरपुर के कुछ क्षेत्रों में 'की' कर्मकारक के प्रत्यय हैं, यही सम्प्रदाय का भी प्रत्यय है, यद्यपि जहां अ`क्षा हो सम्प्रदान कारक को कर्मकारक से स्पष्ट करने के लिए 'तांई' या 'ताइंएं' अलग प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है।

कर्ताकारक की 'ए' विभक्ति साधारणतः करणकारक का भी प्रत्यय है परन्तु अधिक स्पष्टता के लिए बाहरी पहाड़ी की बोलियों में 'कन्ने' तथा भीतरी पहाड़ी में 'साथे' का प्रयोग होता है। उच्चारण भेद के कारण 'साथे' के प्रायः 'साती' 'सित्ते' 'सेइते' 'सेत्ते' रूप मिलते हैं। अपादान कारक के 'ते', 'दो' और 'का' तीन प्रत्यय प्रचलित हैं। 'का' मूलतः केवल चम्बयाली में प्रयुक्त होता है। 'ते' संस्कृत की इसी विभक्ति के (:)– तु का परिवर्तित रूप है और बाहरी पहाड़ी की सभी बोलियों में इस का प्रयोग मिलता है। पहाड़ी में कठोर व्यंजनों को कोमल में बदलने की आम प्रवृत्ति है, अतः 'ते' से भीतरी पहाड़ी में 'दे' रूप बना है जो सिरमौरी और महासुई में 'दो' बन गया है । सम्बन्धकारक के बारे में विशेष व्याख्या की आवश्यकता नहीं। बाहरी पहाड़ी में 'दा-दे-दी' तथा भीतरी पहाड़ी में 'रा-रे-री' इस के प्रत्यय हैं।

अधिकरण कारक के 'में' के अर्थ में पहाड़ी भाषा का मुख्य परसर्ग 'मंझ' <सं० मध्यम् है जो ध्वनिविकार के कारण मंझ-मांझ-मांझे-मोंझे माएं रूप में प्रचलित है । बाहरी पहाड़ी में यही 'मंझ' प्रायः 'ज' या 'च' में बदल गया है। 'पर' के अर्थ में चम्ब-याली, कांगड़ी, मण्डियाली, बिलासपुरी में 'पर' तथा जौनसारी, सिरमौरी, बघाटी, महासुई, कुलुई में पांदे शब्द प्रयुक्त होता है। पांदे <सं० उपांत ध्वनि–परिवर्तन के कारण बघाटी में 'पांयें' हो जाता है और सिरमौरी और महासुई के कुछ क्षेत्रों में 'पांदे' का पूर्वाक्षर लुप्त हो कर केवल 'दा' रूप में भी प्रयोग में मिलता है ।

सर्वनाम

जौनसारी उत्तर प्रदेश से लेकर भद्रवाही (जम्मू कश्मीर) तक उत्तम-पुरुष एक वचन कर्त्ता कारक अविकारी रूप 'हऊं' है जो संस्कृत अहम् > अहअ > हऊं रूप में विकसित हुआ है । कहलूरी और मण्डियाली के समस्त क्षेत्र में तथा कांगड़ी के अधिक भाग में 'हऊं'

का ही सामान्य उच्चारण भेद के साथ प्रयोग मिलता है परन्तु जब यह प्रत्ययों के साथ प्रयोग के लिए विकृत हो जाता है तो रूप–भिन्नता आती है – जौनसारी, सिरमौरी कांगड़ी के बाह्य भाग, बिलासपुरी–मण्डियाली के कुछ भागों तथा चम्बयाली में यह 'मीं' या 'मि' में बदल जाता है। महासुई, कुलुई, कांगड़ी, मण्डियाली–बिलासपुरी के भीतरी भागों में, गादी, चुराही और भद्रवाही में 'मू' या 'मुं' तथा बघाटी में 'मां' रूप में प्रयोग में आता है। उत्तम पुरुष बहुवचन में दो रूप प्रचलित हैं – 'हामें' और 'आसे' बोलियों के आधार पर इन्हें अलग अलग करना कठिन है क्योंकि एक ही बोली में भी दोनों रूप समानत: प्रचलित हैं कुलुई में एक ही व्यक्ति एक सांस से 'असांरा' (असां से) बोलता है और दूसरे से 'म्हारा' ('हामें' से) पहले ही ध्वनि–तत्व में श > स > ह में बदलने की पहाड़ी की मुख्य विशेषता का उल्लेख किया जा चुका है। इसलिए 'असां' से 'अहां' रूप भी स्वाभाविकत: प्रचलित है–असांरा > अहां–रा, असां जो > अहां जो आदि। ये दोनों रूप संस्कृत 'अस्म' से व्युत्पन्न हुए हैं–अस्म > अस्सं > असां > अस्मे > अह्मे > हमें > हामें *।

मध्यम पुरुष एकवचन कर्त्ताकारक अविकारी रूप 'तू' सारे क्षेत्र में समानत: प्रचलित है। इस का तिर्यक रूप 'तें' है जो कारक प्रत्यय लगने से पूर्व कहीं-कहीं 'ति' 'तु' या 'तों' में भी बदल जाता है। यह बोली-भेद के कारण नहीं बल्कि स्थान-भेद के कारण है, क्योंकि कांगड़ी, बिलासपुरी, मण्डियाली, चम्बयाली में स्थान-स्थान पर 'तिजो' या 'तुजो' दोनों रूप प्रचलित हैं। मध्यम्-पुरुष का बहुवचन रूप 'तुमे' और 'तुसे' ठीक वैसे ही प्रचलित है जैसे उपर्युक्त 'हामे' और 'आसे'। तुम' से 'तुमे', 'तुहें' तुएं' तथा 'तुस' से तुसे, तुसां, तुहां रूप ध्वनिपरिर्वतन की प्रवृति के कारण स्थान-स्थान पर प्रचलित है। सामान्यत: जौनसारी, सिरमौरी, बघाटी, महासुई, में 'हामे' और तुमे' और कांगड़ी, बिलासपुरी, मण्डियाली, चम्बयाली, भद्रवाही और कुलुई में 'आसे-असें' तथा 'तुसे' का प्रयोग अधिक है।

सर्वनाम के क्षेत्र में पहाड़ी की मुख्य विशेषता अन्य-पुरुष में लिंग-भेद के कारण भिन्न प्रातिपदिकों का प्रयोग है। कुछेक सीमावर्ती बोलियों को छोड़ कर पहाड़ी की शेष बोलियों में अन्य-पुरुष के लिंग भेद के कारण अलग अलग शब्द हैं। हिन्दी में, 'वह' और इस का तिर्यक रूप 'उस' दोनों पुल्लिग और स्त्रीलिंग के लिए समानत: प्रचलित हैं। इन के लिंग भेद के कारण अलग भेद नहीं है। इसी तरह 'यह' और इसका तिर्यक रूप 'इस' पुल्लिग और स्त्रीलिंग के लिए एक समान प्रचलित है। जब हिन्दी में 'उस' (या 'इस') को दो' कहा जाता है तो स्पष्ट नहीं कि 'उस' (इस) पुरुष है अथवा स्त्री। परन्तु पहाड़ी की मुख्य बोलियों में इन के स्त्रीलिंग और पुल्लिग के लिए अलग-अलग तिर्यक रूप हैं, जैसे कुलुई में एई शोहरू-बे 'इस लड़के को', परन्तु एसा शोहरी-बे 'इस लड़की को'। पुरुषवाचक अन्य पुरुष तथा निश्चयवाचक के इस तरह पुल्लिग और स्त्रीलिंग के लिए अलग-अलग प्रातिपदिकों की विशेषता मुख्यत: सिरमौरी, बघाटी, महासुई, कुलुई, चुराही, चम्बयाली, भटियाली, कहलूरी बोलियों में पाई जाती है। परन्तु यह भेद प्राय: एक वचन में ही स्पष्ट रहता है, बहुवचन में स्त्रीलिंग और पुल्लिग के समान रूप रहते हैं। अन्य सर्वनामों में उच्चारण-भेद के अतिरिक्त कोई विशेष बात उल्लेखनीय नहीं है।

*विस्तार के लिए देखें मौलू राम ठाकुर—'पहाड़ी भाषा: कुलुई के विशेष संदर्भ में' पृ0 113।

विशेषण

पहाड़ी भाषा की भीतरी शाखा की बोलियों में विशेषण पद हिन्दी के समान विशेष्य पद के लिंग-वचन के अनुसार बदलते हैं, और बाहरी शाखा में यह परिवर्तन पंजाबी की तरह रहता है परन्तु विशेष बात द्रष्टव्य यह है कि बाहरी पहाड़ी अर्थात् कांगड़ी, चम्बयाली, मण्डियाली, बिलासपुरी में विशेषण का विकारी रूप पंजाबी से भिन्न रहता है। इन बोलियों में एकवचन में भी विशेषण पद में वैसा परिवर्तन आता है जैसा कि विशेष्य पद में। जहां पंजाबी में 'काली घोड़ी नू घा पाओ' रूप प्रचलित है वहां इन बोलियों में 'कालीया घोड़ीया जो घाह् पाओ' होता है।

क्रिया-पद

पहाड़ी क्षेत्र में सामान्य सहायक क्रिया दो रूपों में प्रचलित है। कांगड़ी, बिलासपुरी, मण्डियाली तथा चम्बयाली में 'भू' धातु से व्युत्पन्न 'हो' तथा 'है' का प्रयोग होता है, जिन में ध्वन्यात्मक परिवर्तन के साथ हा, आ, हे, ऐ, ए आदि रूप स्थान भेद के अनुसार प्रयुक्त होते हैं। इसकी उत्पत्ति इस प्रकार सिद्ध होती है--सं0 भू> भव> भो> हो। शेष बोलियों में सं0 'अस्' से व्युत्पन्न--अस्ति> अस्सि> सी रूप प्रचलित है जिस में भी स्थान-भेद के कारण उच्चारण-भेद आता है। कुलुई में 'सी' का अर्थ 'है' है और 'सा' शब्द 'हैं' के लिए प्रयुक्त होता है। जौनसारी, सिरमौरी, बघाटी, भद्रवाही, पंगवाली में सं0 अस्ति से 'औसा' या 'आसा' रूप 'है' के अर्थ में प्रचलित है। 'अ-आ' के 'औ' में बदलने की पहाड़ी की प्रवृत्ति के कारण इन्हीं बोलियों के कुछ क्षेत्रों में, विशेषतः महासुई में यह 'औसौ' रूप में भी उच्चरित होता है। लिंग और वचन भेद के कारण 'औसा' या औसो' मे परिवर्तन कम ही दिखाई देता है, सिवाए पंगवाली के जहां 'है' के लिए 'असा', 'हैं' के लिए 'असे' तथा स्त्रीलिंग में 'असी' रूप स्पष्टतः प्रयुक्त होते हैं। 'अस्ति' से व्युत्पत्ति के कारण भीतरी पहाड़ी की बोलियों में नकारात्मक सहायक क्रिया 'नाथी' <सं0 नास्ति का प्रयोग भी व्यापक है जो बाहरी पहाड़ी में विद्यमान नहीं है।

सहायक क्रिया के भूतकालिक रूप बाहरी पहाड़ी में हिन्दी की तरह 'था', 'थे' और 'थी' प्रचलित हैं। भीतरी पहाड़ी में, कुलुई को छोड़ कर, ये रूप 'थिया' 'थिये' और 'थी' बनते हैं। कुलुई में केवल एक ही शब्द 'थी' का प्रयोग होता है जो 'था' और 'थे' का भी काम देता है, अर्थात् इस में लिंग और वचन भेद नहीं है सामान्य भविष्यत् काल में भी दो तरह के प्रत्यय प्रचलित हैं-बाहरी पहाड़ी में हिन्दी की तरह गा--गे--गी प्रत्यय का और भीतरी पहाड़ी मे ला--ले--ली का प्रयोग होता है। परन्तु सम्भाव्य भविष्य में सभी भीतरी और बाहरी बोलियों में एक ही रूप है-खाणा, पीणा, उठणा आदि प्रचलित हैं।

किन्नौरी बोलियाँ

—ठाकुर सेन नेगी

जब हम केवल किन्नौरी बोली, अर्थात् किन्नौरी कहलाने वाली एक मात्र बोली की बात करते हैं तो साधारणतः उस बोली की चर्चा चलती है, जिसे राहुल जी तथा कुछ औरों ने हमकद या हमस्कद कहा है और जो किन्नौर के अधिकांश भाग में बोली जाती है और जो किसी समय किन्नौर के उन रहे-सहे भागों में भी प्रायः बोली या समझी जाती थी जहां कि अपनी पृथक मातृबोलियां रही हैं। जब जनगणना के प्रयोजनार्थ गणनाकारक जबान पूछते हैं तो उत्तर देने वाला किन्नौरा जवाब तो यही देता है कि उसकी जबान किन्नौरी है परन्तु अभिप्रायः किसी का कुछ होता है और किसी का कुछ अन्य। जो लोग अपनी भिन्न मातृबोली रखते हुए भी ऊपरोक्त मुख्य किन्नौरी बोली बोल सकते हैं वे तो भले ही उस मुख्य बोली को मन में रख कर अपना ऊपरोक्त जवाब देते हैं परन्तु जो मुख्य किन्नौरी नहीं जानते, वे अपना ऊपरोक्त उत्तर इस अर्थ में देते हैं कि उनकी मातृ बोली भी ऐसी जगह बोली जाती है जो किन्नौर का ही एक भाग है और जिस कारण वह बोली भी किन्नौर की ही एक बोली है।

यदि हम परिभाषाओं की बारीकियों में पड़ें तो प्रश्न उत्पन्न होगा कि क्या किन्नौरी का अपना कोई साहित्य है या क्या इसकी अपनी कोई लिपि है, यदि नहीं, तो किन्नौरी भाषा नहीं है ? बोली मात्र है। किन्नौरी की अभी तक अपनी कोई लिखित सम्पत्ति नहीं है जिसे उसका साहित्य पुकारा जाये। लिपि पहले टांकरी होती थी और अब देवनागरी है। इस परख में तो किन्नौरी भाषा की पदवी प्राप्त नहीं करती परन्तु इस लेख में जहां कहीं किसी बोली के सम्बन्ध में मातृभाषा शब्द प्रयोग में आया है, वहां ऊपरोक्त पारिभाषिक नफासत को सामने नहीं रखा गया है और शब्द भाषा को बोली शब्द के पर्याय के रूप में इस्तेमाल किया गया है और इस अर्थ में किन्नौर की भिन्न बोलियां निम्न दर्शित क्षेत्रों में स्थानीय मातृभाषायें हैं :—

(1) वह बोली जिसे मुख्य किन्नौरी कहा जाता है, समस्त निचार उप-खण्ड में, सिवाये, छितकुल तथा रकछम ग्रामों के समूचे काल्पा उप-खण्ड में और पूह उप-खण्ड के इन ग्रामों में, अर्थात् रारंग, रिब्बा, रिस्पा व स्किबा, ठंगी व लबरङ्, मूरंग, ज्ञाबुंग और रोपा में बोली जाती है।

(2) छितकुल तथा रकछम की बोली जो केवल इन्हीं दो ग्रामों की मातृभाषा है। इन दोनों ग्रामों में मुख्य किन्नौरी भी पिछली पीढ़ियों के लोग भली भांति बोलते हैं।

(3) कुनो-चारंग तथा नैसंग की आदि मातृभाषा मुख्य किन्नौरी से भिन्न रही है परन्तु बीच में कुछ काल ऐसा भी रहा है जिसमें इन तीनों ग्रामों में मुख्य किन्नौरी को दूसरे दर्जे की मातृभाषा जैसा प्रचलन मिल गया था। कुनो और चारंग में तो बिल्कुल एक ही बोली है। नैसंग-बोली में थोड़ा कहीं कहीं अन्तर है पर इतना नहीं कि उसे पृथक ही बोली समझा जाए।

(4) जंगरामी बोली–जो जंगी, लिप्पा और आसरंग ग्रामों की मातृभाषा है।

(5) शुमछो की मातृभाषा,–जिसे 'थँबर कद' भी कहते हैं और जो कानम लाबरंग व करला तथा स्पिलों में पायी जाती है और जो मामूली स्थानीय विशेषताओं के अधीन स्यासो और रोशकुलंग व तालिंग में भी बोली जाती है।

(6) अकेले सुन्नम गांव की मातृभाषा।

(7) वह बोली जो सारे शेष रहे पूह उप-खण्ड की मातृभाषा है। पूह, डार्बालिंग, डर्बालिग, खाबो, नामज्ञा और टाशिगंग ग्रामों में तो यह बोली पूर्ण समानता से बोली जाती है। हंगरंग उपत्यका के ग्रामों में इस बोली के भीतर कहीं-कहीं किंचित स्थानीय विशेषतायें आ गई हैं। हां, ये विशेषतायें इतनी महत्वपूर्ण नहीं हैं कि वहां के निवासी पूह उप-खण्ड के अन्य ग्रामों में बोली जाने वाली भाषा को न समझ पायें या इन दूसरे गांवों के रहने वाले वहां की बोली को न समझ सकें।

इस आधार पर कि छित्कुल तथा रक्छम के केवल दो ग्रामों को छोड़ कर पूह उप-खण्ड से बाहर सारे किन्नौर में मुख्य किन्नौरी बोली जाती है, कुछ लोग किन्नौर की बोलियों को दो सहज भागों में विभाजित कर छोड़ते हैं। एक को वह पूह की बोली कह देते हैं और दूसरी को काल्पा की बोली। दोनों संज्ञायें अशुद्ध हैं। कोई बोली ऐसी नहीं जो केवल पूह ग्राम या काल्पा गांवों में बोली जाती हो और यदि पूह का अर्थ पूह उप-खण्ड (Pooh Sub-division) लें तो, जैसा कि ऊपर देखा जा चुका है, वहां मुख्य किन्नौरी समेत छः बोलियां बोली जाती हैं परन्तु जब हम सारे उप-खण्ड, न कि केवल एक गांव को ध्यान में रख कर पूह कहते हैं तो हमें पूह की बोली न कह कर पूह की बोलियां कहना चाहिए। दूसरी ओर काल्पा की बोली नाम की कोई भाषा नहीं है, चाहें काल्पा हम ग्राम के अर्थ में उच्चारें चाहें उप-खण्ड के माने में। मुख्य किन्नौरी केवल काल्पा में ही सीमित नहीं है, न इस नाम के गांव में और न ही इस नाम के उप-खण्ड में।

(8) अभी तक इस लेख में हरिजन बोलियों का कोई ज़िक्र नहीं आया है। जो लोग नवीन परिभाषाओं तथा नए नामकरण में हरिजन कहलाते हैं वे पटवारी के कागज़ों में (जब कागजात माल में जातें लिखी जाती थीं) और उन लोगों में से बहुत से अब जनगणना सम्बन्धी जात-पात के पूछताछ के उत्तर में, अपने को कोली या लोहार या बाढ़ी आदि लिखाते रहे हैं। इनमें से लोहार

तथा बाढ़ी नगण्य भिन्नताओं सहित एक सी बोली बोलते हैं और कोली जो कि संख्या में कहीं अधिक हैं, अलग बोली बोलते हैं जो लोहार-बाढ़ी बोली से ज्यादा नहीं मिलती । सिवाये एक गांव रोपा के जहां पर कि सवर्ण और हरिजन दोनों मुख्य किन्नौरी बोलते हैं, सर्वत्र जहां जहां कि मातृभाषा मुख्य किन्नौरी है, हरिजनों की मातृभाषा उनकी अपनी बोली ही है, मुख्य किन्नौरी नहीं । अन्यत्र हरिजनों की मातृभाषा वही है जो सवर्णों की। सिवाये छित्कुल, रक्छम तथा सुन्नम के प्रथमोक्त दो ग्रामों में सवर्ण तो अपनी छित्कुल रक्छमी बोलते हैं परन्तु हरिजन हरिजनों वाली बोली । सुन्नम में सवर्णों की मातृ भाषा सुन्नमी बोली है और हरिजनों की थेबरकद ।

नई नसलें जो शिशु अवस्था में ही पाठशालाओं में हिन्दी के वातावरण में पलती हैं, उनकी दशा तो कुछ और है । अन्यथा हरिजन अपने ग्राम की सवंण बोली प्रायः भली-भांति समझ और बोल सकते हैं और सवर्ण भी अधिकांशतः हरिजन बोली कम व बेश समझ ही लेते हैं और कोई कोई अच्छी तरह बोल भी लेते हैं।

(9) नीचे किन्नौर की सभी बोलियों के कुछ शब्द और पांच फिकरे दिये जाते हैं। उन्हीं अंग्रेजी शब्दों तथा फिकरों के अनुवादित शब्द और फिकरे इन बोलियों में दिये गये हैं–

Sl. No.	English	Major Pooh	Thebar	Jang-rami	Kuno-Charang	& Nesang	Chhitkul & Rakchham	Sunnam	Harijan	Main Kinna-uri
1	2	3	4	5	6		7	8	9	10
1	Hair	टा	क्रा	क्रा	टा	क्रा	क्रा		बाल	क्रा
2	Head	गो	पिशा	पिशा	गो	पिचा	पिशा		मुन्जकण	बल
3.	Forehead	टाल	पया	फया	टाल	फया	फया		निजाल	फ़या
4.	Eye	मिक	मी	मिग	मिग	मी	मी		आंखि	मिग
5.	Nose	ना	मुर	ताकुच	ना	रिम	मुर		नाक	ताकुच
6.	Ear	नामजौक	रैपङ	रेत	नामजौक	रौच	रैपज		कान	कानड्
7.	Hand	लक्पा	गुत	गुत	लक्पा	लऊ	ला		हाथ	गुद
8.	Mouth	खा	आखौद	आ	रवा	आ	आ		मूं	खाकज
9.	Sun	नीमा	नी	नी	नीमा	नी	नी		दियूस	युनें
10.	Moon	लर	गौल्सङ्	गौल्सङ्	लगार	गौल्सङ्	गौल्सड्		जोत	गोल्सड्
11.	One	चिक	इद	इद	चिग	ई	ती		एक	इद
12.	Two	जी	निश	निश	नी	निशी	निशी		द्वी	निश
13.	Three	सुम	हुम	हुम	सुम	हौमो	सुम		त्रौन	शुम

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
14,	Four	जी	पश्र	पश्र	जी	पश्र	पी	चार	पश्र
15.	Five	ङा	ङा	ङा	ङा	ङा	ङाई	पांच	ङा
16.	Six	टुक	टु	टुक	टुग	टु	टुगी	छे	टुग
17.	Seven	डुन	शितिश	तिश	दून	टिश	नाशी	सात	तिश
18.	Eight	ज्ञेंत	ज्ञेंद	ज्ञेंद	तुई	रै	ज्ञेत	आठ	रै
19.	Nine	गृ	गृ	गृ	गुवी	गुवी	गुवी	नौ	गुवी
20.	Ten	चू	सा	चुई	चू	सै	चुई	दस	सै
21.	Eleven	चुकशिक	सैइद	चुथी	जुशिक	सहिद	चत्थी	ग्यारा	सिहिद
22.	Twenty	श्रीश	निसा	निसा	नीश	निजा	निसा	बीस	निजा
23.	Hundred	ज्ञा	ज्ञा	रा	ज्ञा	रा	ज्ञा	रा	रा

1. Where are you going ?

(*a*) Major Pooh Dialect

(1) ङ्यैंद का लाङ्येयता ?

(2) ङ्यैंय का लाक्यौंद कन ?

(The second sentence is honorific "क्यौंद कन" "meaning, तशरीफ ले जा रहे हैं" ।
"जा रहे हैं"।

instead of simple जा रहे हैं ।

(*b*) Thebar Kad

(1) का अम जेयो तौंन ?

(2) गिरङ आम जेयो तौईं ?

The second is again honorific
"आप कहां पधार रहे हैं ?"

(*c*) Jangrami

(1) कान गोवे देनिच तौरम ?

(2) ज्ञाम गोवे देनिचे तौरम ?

(Honorific)

(*d*) Sunnam Dialect

(1) ङान गोदेया निन?

(2) हुनी गोदेया नीनो ?

(Honorific)

(e) Kunu-Charang-Nesang Dialect
Similar to Major Pooh.

(f) Chhitkul-Rakchham Dialect

(1) कत गो रोवा ?
(2) किन गो रोवा ? (Honorific)

(g) Harijan (Koli) Dialect

(1) तु किन तणिन ?
(2) तु किन नशिन्स ? (Honorific)

(h) Main Kinnari

(1) का हम ब्यो तोन ?
(2) कि हम ब्यो तोञा ?

II Take tea (Drink tea).

(a) (I) चा छुङ्
(II) चा छोद

(b) (I) चा तुङ्
(II) चा तुङ्ना

(c) (I) चा तुङ्
(II) चा तुङ्म

(d) (I) चा तुङ्
(II) चा तुङ्न

(e) As in (a) (i)(ii)

(f) (I) चा तुङ्
(II) चा तुईं

(g) (I) चा जुट

(h) (I) चा तुङ्ङ
(II) चा तुङ्ञा

III. When does your son's marrige take place?

(a) जियें टुगू यशी पागत्ति नम हिन्दाऊ ?
(b) गिरो छङ ख़ टाशिस टाशपा तो ?

(c) ञे छङ्ग के नमशा एलखं तुसैन ?
(d) हुनी छङ रवे टाशिस इनोनी ?
(e) जीं टुगू टाशी नम ?
(f) कीं ग्राची रायेंटङ् हामें ग्राचतो ?
(g) तेरे छैंङ रौ ज्ञानेंक कद ?
(h) किन छाज ज्ञानेटज तैरज तो ?

IV. You were ill; how are you now?

(a) ङिद नौ सिरा, तासङ्ग चुग टागपा ?
(b) गिरङ्ग शैतु तौई, छङ्ग हाले तो ?
(c) ज्ञाम नासीं तौरिम, था हाले तो ?
(d) हुनी नाखा तिग्रो, था खैया नीं ?
(e) ङिद ना जा, सेङ चुग टांग ?
(f) किन नासी तौ तैंई, था हालें तोंई ?
(g) तु व्याज़वी, ऐ कैनौ स: ?
(h) कि चौ चौ तौच, हन हाल तौञ ?

V When are you sowing your field ?

(a) ङीयें शिङ नस मोयेता ?
(b) गिरो री पुदमा ताशपा ?
(c) ज्ञाम गे रिगना एल्खां पन्नम ?
(d) हुनी री मैयोवङ इनु ?
(e) ङी शिङ्ग नम देबकन?
(f) किन री हामें पुचा तौंई ?
(g) तु तैरो डारैवरौ कैंतर बौंदे स: ?
(h) कि किन रिम तैरङ् पशो तौञ ?

ऊपरोक्त जो नमूने के 23 शब्द और 5 वाक्य दिये गये हैं उनसे निम्नलिखित रोचक क्षण तो तुरन्त ही स्पष्ट दीखते हैं :—

(1) हरिजन बोली बिल्कुल पृथक ही वर्ग की बोली है।

(2) बाकी बोलियों में कहीं-कहीं शब्द समानता है। यह समानता मुख्य किन्नौरी के अतिरिक्त जो अन्य बोलियां हैं उनमें से कुछ में परस्पर अधिक है। गिनती में पांच का सामानार्थक शब्द 'ङा' तो हरिजन बोली को छोड़ सभी बोलियों में पाया जाता है।

(3) शब्दों में जितनी समानता कहीं पाई जाती है, वाक्यों में कुछ उतनी ही भिन्नता आ जाती है जिस से वह समानता अपना महत्व खासा खो बैठती है।

पूह की बोलियां

(10) पूह उप-खण्ड में प्रचलित बोलियों में से कुनो, चारंग , नैसंग, पूह ग्राम तथा पूह से आगे तिब्बत की दिशा में तथा स्पिति की ओर जितने ग्राम आते हैं, जिस क्षेत्र म समूची हंगरंग उप-तहसील आ जाती है, अर्थात् पूह उप-खण्ड की मुख्य बोली तथा वह उप बोली जो कुनो, चारंग और नैसंग की मातृभाषा है, इन दोनों बोलियों पर पड़ोसी तिब्बती इलाके की बोलियों की जातीय छाप अभी तक स्पष्ट तथा घनिष्ठ रूप में दीखती है। तिब्बत के जो इलाके कुनो, चारंग से नैसंग से, तथा पूह उप-खण्ड के तीसरे किनारे से लगत हैं वहां भी बोलियों में कुछ-कुछ स्थानीय अन्तर हैं और उन्हीं अन्तरों की झलक किन्नौर की इन बोलियों के परस्पर थोड़े-थोड़े भेदों की शक्ल में पायी जाती है। यह दोनों बोलियां भाषाओं के तिब्बती वंश की उपज हैं। लेकिन तिब्बती वह तिब्बती नहीं जो साहित्य में पायी जाती है बल्कि वह जो सर्वसाधारण की जीभ पर चलती है और जीभ भी ल्हासा जैसे दूरस्त तथा उन्नत इलाके की नहीं वरन् साथ लगते तिब्बती क्षेत्रों की। इसी नाते आश्चर्य नहीं होता, जब स्पिती बल्कि लद्दाख की बोलियां भी पूह उप-खण्ड की इन बोलियों से कुछ न कुछ मिलती जुलती पायी जाती हैं।

(11) अब रही पूह उप-खण्ड की शेष बोलियां जो कि उप-खण्ड के उन भागों की मातृ भाषायें हैं जहां की मातृभाषा मुख्य किन्नौरी नहीं है। सुन्नम ग्राम की अकेली बोली का कुछ अंश अपना पृथक ही है और शेष भाग "पड़ा पाया और देख उठाया" वाला मामला नज़र आता है, जिसके फलस्वरूप खिचड़ी सी पकी हुई है। ऐसी दशा में भी यह बोली थैबर कद तथा जंग्रामी के निकट अधिक है, बमुकाबला अन्य बोलियों के कुछ ऐसी ही स्थिति थैबर और ग्रामी के सम्बन्ध में भी दीखती है जो दो बोलियों की अन्य बोलियों से अपेक्षाकृत परस्पर अधिक मेल खाती हैं। (क्षेत्र भी पास-पड़ोस में हैं) परन्तु फिर भी तुरन्त यह नहीं कहा जा सकता है कि यह एक ही माता के गर्भ से उत्पन्न दो बहिनें हैं।

छित्कुल रक्छम की बोलियां

(12) इसे हम सुन्नमी की सहपाठी बोली इस माने में कह सकते हैं कि इसकी भी अंतर्भाग में तो कुछ स्वजातीयता है, परन्तु वहां से आगे मिश्रित विकास हो गया हुआ है।

हरिजन बोलियां

(13) भाषा-वंश की खोज में चलें तो नज़र यह आयेगा कि कोली बोली और लोहार-वाड़ी बोली दोनों बोलियां किसी ऐसे वंश की हैं जो उस किसी भी वंश से पृथक और भिन्न

की कोई अन्य बोली उत्पन्न हुई है। इन
है जिस से कि मुख्य किन्नौरा अथवा किन्नौर पाया जाता है जो ज़िला शिमला के कुछ
हरिजन बोलियों का साफ रिश्ता उन बोलियों से वाक्यों से विदित है लोहार और
भागों में बोली जाती है। जैसे कि ऊपर दिये गये है तो वह विकास के मार्ग की
बाढ़ी तो एक ही बोली बोलते हैं। यदि कोई अन्तर आ गया कोई पत्ता किसी विशेष आकार
देन है। जड़ एक है, तना एक है, शाखें वही हैं। कहीं कभार
का सा लगता है तो वह नगण्य है।

मुख्य किन्नौरी

(14) आदि-कालीन शुद्धता तो किसी भी जीवित बोली या भाषा में नहीं रहती।
मुख्य किन्नौरी की भी बड़े स्तर पर वही मिश्रित अवस्था है जो छोटे पैमाने पर सुन्नमी,
छिट्कुल- रकछमी, और कुछ कम मात्रा में अन्य किन्नौरी बोलियों की है। इतना फर्क
है कि मुख्य किन्नौरी में यह मिश्रण "पड़ा पाया देखा उठाया" वाली प्रक्रिया से प्रायः
नहीं आया है। किसी इक्के दुक्के शब्द मात्र में या किसी बिरली कहावत में ऐसा हुआ
हो तो हो सकता है। अधिकांश हुआ यह है कि इतिहास के भिन्न कालों में किन्नरदेश में
बाहर से अन्य जातियों के लोग आ आ कर बसते रहे हैं। और आदि किन्नरी में उन
प्रवासियों की बोलियों के कुछ अंश तथा किंचित लक्षण खपते गये हैं। आदि किन्नर
किस भाषा का भाषी था यह किसी अभिलेख या ग्रन्थ में दिया गया है तो मैंने अभी
ऐसा उल्लेख कहीं पढ़ा नहीं है। इतना निस्सन्देह है कि आज की किन्नौरी में एक अच्छा
बड़ा अन्तरभागीय अंश ठेठ स्वजातीय है। श्री राहुल जैसे लेखकों ने मुख्य किन्नौरी को
"हम कद" या "हम स्कद" कहा है। परन्तु यह "हम" क्या है और क्यों मुख्य किनौरी
को "किन्नरी" (किन्नरों की भाषा) न कह कर "हम" कहा जाये, यह नहीं बताया।
"कद या "स्कद" का अर्थ तो "बोली" है, पर यह "हम" क्या है ? आधुनिक
किन्नौरी में जो संस्कृत की कुछ बू वास है वह आदि किन्नरी में संस्कृत के
अभिन्न अंग होने का बचा खुचा परिणाम है या कि आदि किन्नरी तो संस्कृत से पूर्वकालीन
भाषा थी या वैसे ही संस्कृत से भिन्न ही कोई वस्तु थी और संस्कृत का मिश्रण भी कोई
बाह्य देन है, यह विषय खोज मांगता है। श्री राहुल सांकृत्यायन ने अपनी पुस्तक
"किन्नर देश" में कुछ शब्द किन्नौरी के दिये हैं जो संस्कृत तत्व के हैं। और खोज की
जाये तो अभी अधिक शब्द किन्नौरी के ऐसे मिलेंगे जो संस्कृत के हैं (चाहे शुद्ध शक्ल
में चाहे अपभ्रंशित आकार में) या से निकले हैं। उदाहरणार्थ किन्नौरी में बकरे को
"अन्ज" कहते हैं जो शब्द कि संस्कृत के "अज" का लेशमात्र विकार है। "दरवाज़ा बन्द
करो" को संस्कृत में "द्वारम विदेही" कहा जायेगा, तो किन्नौरी में "द्वारङ् पिद"।

खश जाति का भी किन्नर देश में आप्रवास हुआ था, इस ऐतिहासिक घटना की प्रमाणता इससे भी होती है कि सवर्णों को मोटे तौर पर "खौशिया" भी कहा जाता रहा था। यदि किरात जाति किन्नर देश में खपते खपते कुछ किरात शब्दादि की भेंट किन्नरी भाषा को कर गई जैसा कि राहुल जी सरीखे अन्वेषकों की खोज रही हो, तो खश भी किन्नरी समाज को एकीभूत होते होते कुछ न कुछ योगदान अपनी भाषा से किन्नरी भाषा को अवश्य कर गए होंगें। कुछ और शोध किया जाये तो ज़रूर यह खश अंश भी आज की किन्नौरी में निकल आयेगा।

tharahkardu.in

Revrend. J Bruske (Moravian Mission) तथा Dr. Sten Kono का यह मत रहा है कि किन्नौरी के व्याकरण से इस बोली का छोटा नागपुर में बोली जाने वाली मुन्डारी से गहरा रिश्ता पाया जाता है।

कुछ शब्दों में समानता या मिलन जुलन तो दुनिया की कई भाषाओं और बोलियों में पाया जाता है, विशेषकर उन शब्दों में जो ऐसी चीजों के नाम हैं जिन से मानव को उस प्रारम्भिक काल में सामना करना पड़ा जब वह अभी बोलना सीख ही रहा था। भाषा-इतिहास और उस द्वारा ज्ञात मानव इतिहास में शब्दों का यह सादृश्य एक महत्वपूर्ण लक्षण है परन्तु इस से भी अधिक अर्थपूर्ण बात होती है—व्याकरणों में समानता या सादृश्य किन्नौरी का विस्तृत अध्ययन। गवेषण के अभिप्राय से किया जाये तो यह कार्य अत्यन्त रोचक रहेगा और इस अनुसंधान में शब्दावलियों से भी अधिक व्याकरणों में खोज वांछित रहेगी।

राहुल जी ने तीन तत्व आधुनिक किन्नौरी में पाए हैं—तिब्बती भाषा (भोट भाषा) का तत्व, संस्कृत-हिन्दी का तत्व तथा किरात भाषा का तत्व। किरात तत्व को उन्होंने मूल माना है। खश तत्व का कोई जिक्र नहीं किया है हालांकि खशों से किन्नरों का समागम उन्होंने भी स्वीकार किया है और इस एक परंच भारी छूट के कारण ही उनकी खोज को अधूरी कहा जा सकता है यद्यपि अभी तक जितना काम किन्नौर की बोलियों पर किसी ने किया है, मैं सामूहिक मूल्यांकन में राहुल जी के काम को सर्वोच्च मानता हूं। मैं राहुल जी की इस धारणा को भी परिपक्व नहीं समझता कि किन्नौरी भाषा का मूल तत्व किरात-भाषा है। मेरी कल्पना यह है कि मूल तत्व तो किन्नरी भाषा थी, अर्थात् आदि किन्नरों की भाषा थी चाहे वह भाषा कुछ भी थी और कोई भी थी। राहुल जी ने फरमाया है, "किन्नर जाति का सब से पुराना स्तर है किरात"। इसी सिद्धान्त पर उन्होंनें किरात भाषा को मूलत्व का स्थान दिया है लेकिन इसका अर्थ तो यह हुआ कि किरात वही लोग थे जिन्हें किन्नर भी कहा गया, जो कि गलत है। किन्नरों और किरातों को सदा पृथक बताया, जताया और माना गया है। आज तक सिवाये राहुल जी के इस सिद्धान्त के मैंने, तो कहीं नहीं पढ़ा कि किन्नर और किरात एक ही जाति थी। ग्रन्थों और अन्य ऐतिहासिक लेखों से तो यही पाया जाता है कि किन्नर जहां भी थे किरातों से बहुत पहले के थे और किरात बहुत बाद में आये। राहुल जी की दी हुई शब्दावली तथा वाक्यावली में कुछ अशुद्धियां भी हैं। परन्तु इस लेख में उनकी चर्चा की गुजांईश नहीं है।

(15) मुख्य किनौरी में भी कुछ स्थानीय विशेषतायें, अथवा भिन्नतायें हैं। ज्यादा तो ये विशेषतायें या भिन्नतायें लहजे में और उच्चारण की रीति में हैं। पुरातन कालों में जब कुछ दूरी पर स्थित दो ग्रामों में भी परस्पर सम्पर्क तथा आदान–प्रदान दुर्गम हुआ करता था, इस प्रकार के अन्तर स्वाभाविक तौर पर ही पनपते रहे। यातायात की अधिक से अधिक सुविधाओं की उपलब्धिओं के साथ साथ समानता बढ़ती जा रही है जिस में यहां की विशेषतायें वहां पहुंच रही हैं और वहां की यहां और फलतः विशेषतायें साधारणताओं में परिवर्तित होती जा रही हैं। कुछ शब्द भी हैं जो क्षेत्रीय भिन्नता लिये हुये हैं। निचार उप-खण्ड में यह क्षेत्रीय भिन्नता अधिक पाई जाती है, वैसे कुछ तो काल्पा

उप-खण्ड तथा पूह उप-खण्ड की मुख्य किन्नौरी भाषा में भी है। ज्यूं ज्यूं तिब्बती सीमा, सतलुज वादी में, नजदीक आती जाती है भोटभाषा का प्रभाव अधिक होता चला गया है। निचार उप-खण्ड दूसरे सिरे में आरम्भ होता है, तिब्बत की ओर से पूह उप-खण्ड आता है और काल्पा मध्य में। शुवा, टुक्रा, राजग्रामङ् अठाहरा बीस, पन्द्रह बीस आदि पुराने परगनों के लिहाज़ से भी ज़रा ज़रा स्थानीय विशेषतायें रहीं हैं।

विकास की दिशा

16. आज कल की किन्नौरी में बढ़ती संख्या में वे शब्द भी हैं जो हिन्दी या उर्दू या अंग्रेज़ी के हैं और जो बाहर वालों से सम्पर्क तथा आधुनिक शिक्षा के फलस्वरूप किन्नौर में घुसते चले जा रहे हैं। अब इन दस एक सालों में यहां तक नौबत आ गई है कि शिक्षित तथा युवक वर्ग तो आपस में भी हिन्दुस्तानी और, जो अंग्रेज़ी अच्छी जानते हैं, दोनों मिला कर अधिक बोलना पसन्द करते हैं और अपनी मातृभाषा कम। यह मेरा नित प्रतिदिन का अनुभव है कि जब कभी कोई किन्नौरा नौजवान मुझ से मिलता है और मैं किन्नौरी में बोले जा रहा हूं तो वह हिन्दोस्तानी या हिन्दुस्तानी और अंग्रेज़ी मिली-जुली भाषा को ही अपनाये जा रहा होता है। कोई बिरला ही ऐसा निकलता है जो किन्नौरी में अपनी बात आरम्भ करे या मेरे किन्नौरी में बोलने पर स्वयं भी किन्नौरी पर उतर आये। जैसे आज स्वतन्त्रता के सत्ताइसवें वर्ष में भी देश का अंग्रेज़ी भाषा में सुशिक्षित वर्ग अधिकांश बोलते बोलते अंग्रेज़ी में कहीं अधिक कूद पड़ता है और हिन्दुस्तानी उसकी जबान पर भूल से आती है, यही दशा किन्नौर के शिक्षित युवकों में से अधिकांश को अपनी मातृभाषा के बारे है ।यदि ठेठ किन्नौरी, अपने शुद्ध रूप में, सुननी हो तो लगभग चालीस वर्ष से कम आयु का व्यक्ति तो शायद ही कोई मिले, सिवाये उन पुरुषों या स्त्रियों के जिन का जीवन आधुनिक सम्पर्कों से अलग-थलग रहा हो।

—यू0 एस0 क्लब शिमला-1।

'भाषा वह नगर है जिसके निर्माण में
हर मनुष्य हिस्सा डालता है'।

—एमर्सन

भर्तृहरि का शब्द-शास्त्रीय ग्रन्थ वाक्य-पदीय

—डा० शान्ति भिक्षु शास्त्री

व्याकरणशास्त्र के विकास के इतिहास में यद्यपि भर्तृहरि का नाम पाणिनि, कात्यायन, एवं पातंजलि के अनन्तर आता है तथापि व्याकरण-दर्शन के प्रवर्तक एवं व्यवस्थापक के रूप में उन्हें अग्रगण्य मानना अत्यन्त उचित है। पाणिनि के सूत्रों पर वार्तिकों के रचयिता कात्यायन यद्यपि शब्द-शास्त्रीय दार्शनिक चर्चा का संकेत करते हैं तथापि उनका प्रयत्न सूत्रों की न्यूनता का दिग्दर्शन कराने में बीत जाता है। भाष्यकार पातंजलि वार्तिकों के ही प्रधान व्याख्याता हैं वे यथावसर दार्शनिक चर्चा करते हैं पर इस अवसरोचित चर्चा का कोई प्रकरणबद्ध रूप नहीं दीख पड़ता। भर्तृहरि ने व्याकरण दर्शन की इस अव्यवस्था को दूर कर उसे एक व्यवस्थित शास्त्र का रूप देकर शब्द-शास्त्र के अध्ययन को एक सुनिश्चित प्रगति के पथ पर डाल दिया है।

भर्तृहरि ने अपने विषय में कोई विशेष जानकारी नहीं दी है। हां, आठवीं शताब्दी के आचार्य शान्तरक्षित के महत्त्वपूर्ण तत्वसंग्रह नामक दार्शनिक ग्रन्थ तथा उस ग्रन्थ पर उन्हीं के शिष्य कमलशील की लिखी टीका में भर्तृहरि को तीर्थिक अर्थात् अबौद्ध मान कर अलोचना की गई है (द्रष्टव्य तत्व संग्रह कारिका 125-152, 2705-2733)। इसके अतिरिक्त प्रसिद्ध चीनी यात्री ई-चिङ् ने कुछ सूचना दी है। ये चीनी पर्यटक सातवीं शती के अन्त में भारत आए तथा बीस वर्ष से अधिक भारत में ठहरे। इनके लेखानुसार भर्तृहरि सात बार बौद्ध भिक्षु बने और सात बार काषाय छोड़ कर गृही बने। शब्द-शास्त्रीय सिद्धान्त चर्चा के प्रसंग में भर्तृहरि का बौद्ध होना कोई महत्व की बात नहीं है तथा उनके अबौद्ध होने की डिडिम-घोष की भी कोई विशेष देन नहीं जान पड़ती।

भर्तृहरि का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है शब्द को एक शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक धरातल पर प्रतिष्ठापित करना। शब्द के भौतिक रूप को जिन आचार्यों ने सुपरिष्कृत किया था वे सब वैदिक परम्परा के विद्वान थे। उन्होंने प्रातिशाख्य एवं शिक्षा-ग्रन्थों का निर्माण करके इस सिद्धान्त को जन्म दिया था कि शब्द का विकास प्राणवायु के सहारे हुआ करता है। इन शिक्षा एवं प्रातिशाख्य के प्रवर्तक आचार्यों ने शब्द के भौतिक आधार को तो ठीक ठीक खोज निकाला था पर मनस्तत्त्वानुबन्धी आधार की ओर उनकी गवेषणा अधूरी ही रह गई थी।

पातंजलि ने शब्द के आधारभूत भौतिकतत्त्व तथा मनस्तत्त्व की ओर विशेष ध्यान दिया। भौतिकतत्व को वाणी के द्वारा प्रकट करना सहज था और उन्होंने इसे ध्वनि शब्द के द्वारा प्रकट किया। यह साधारण सा 'ध्वनि' शब्द बहुत भाग्यशाली निकला।

आलंकारिकों ने इस एक शब्द के अन्तराल में व्यंजनावृत्ति, व्यंग्यार्थ तथा व्यंजक शब्द को प्रतिष्ठित कर ध्वनिसम्प्रदाय का प्रवर्तन किया तथा निरन्तर इस बात का स्मरण कराते रहे कि इस सिद्धान्त का उद्भव आदि विद्वान वैयाकरणों के प्रयत्न से हुआ है। शब्द के आधारभूत मनस्तत्व को पातंजलि ने स्फोट शब्द से प्रकट किया। स्फोट वस्तुत: एक प्रकार का मनोजल्प है। मनोजल्प कहने का अभिप्राय यह है कि यदि हमें स्फोट तत्त्व पर कुछ ऊहापोह करने का अवसर मिले तो सर्वप्रथम यह बात मन में रख लेनी होगी कि हमारी विचार चर्चा का प्रधान तत्व एक अभ्यन्तर का पदार्थ है जिसके बाह्य रूप को हम सरलता से अभिव्यक्त करने के लिए ध्वनि शब्द का प्रयोग कर बैठते हैं।

शब्द विषयक शास्त्रीय चर्चा के प्रसंग में स्फोट तथा ध्वनि ऐसे दो पक्ष हैं जिनका पता भर्तृहरि से पहले ही चल चुका था पर उनका स्वरूप अस्पष्ट ही बना रहा था। भर्तृहरि ने इन दोनों शब्दों के पक्षों का दार्शनिक विवेचन किया। उन्होंने स्फोट को परमार्थ शब्द तत्त्व माना। ध्वनि का व्यावहारिक स्वरूप जैसा शिक्षा ग्रन्थों में मान्य था वैसा उन्होंने मान लिया पर साथ-साथ यह स्पष्टीकरण भी कर दिया कि हमारे वाक्तत्त्व को जो जीवित रूप प्राप्त होता है वह मुखोच्चारित एवं श्रोत्रग्राह्य ध्वनि समूह के कारण प्राप्त नहीं होता प्रत्युत उस मनोजल्प के कारण प्राप्त होता है जो कि ध्वनि समूह का सत्य आधार होता है। इस तथ्य को भर्तृहरि के शब्दों में उद्गृहीत कर लेना यहां पर प्रसंग प्राप्त है। उनकी ब्रह्मकांड के अन्तर्गत इस विषय में प्रकाश डालने वाली कारिका यों है :—

अरणिस्थं यथा ज्योति: प्रकाशान्तरकारणम्
तद्वच् छब्दोऽपि बुद्धिस्थ: श्रुतीनां कारणं पृथकम्

जैसे अरणियों में (अदृश्य रूप में) विद्यमान अग्नि दूसरी (दृष्य रूप में) विद्यमान अग्नि का कारण बन जाती है वैसे ही बुद्धि में (अग्रण्य रूप में) विद्यमान शब्द श्रुति-समूह का (श्रव्य रूप में साक्षात्कारई ध्वनि समूह का) कारण बन जाता है, यद्यपि वह (ध्वनि समूह से सर्वथा) पृथक (ही) होता है।

इस प्रकार शब्द जो वस्तुत: एक अविभाज्य तत्व है, एक परमार्थ तत्त्व है, उसे व्यवहार के द्वारा निरूपण करने के लिए दो वर्गों में विभक्त करना पड़ता है। प्रथम वर्ग में उन शब्दों का अन्तर्भाव किया जाता है, जो बुद्धिस्थ होते हैं तथा स्थान, प्रयत्न, करण एवं गुणों से सर्वथा अछूते रहते हैं। दूसरे वर्ग में उन शब्दों का अन्तर्भाव किया जाता है जिन्हें श्रवणेन्द्रिय द्वारा ग्रहण किया जा सकता है। बुद्धिस्थ शब्द, मनोजल्प, मूलशब्द अथवा निमित्तभूत शब्द आदि पदों के द्वारा हम उस आधारभूत शब्द की ओर संकेत करते हैं, जो वैयाकरणों की परिभाषा में स्फोट कहलाता है। स्फोट मूलक श्रवणेन्द्रिय-ग्राह्य शब्द के लिए संकेतित शब्द-ध्वनि है। ध्वनि और नाद एक दूसरे के पर्याय हैं।

ध्वनि अथवा नाद का आधारभूत शब्द मनोजल्प होता है, इस मनोजल्प को यदि अधिक स्थूल रूप में व्यक्त करना अपेक्षित हो तो हम उसे मनोमूर्ति कह सकते हैं। इस

मनोमूर्ति शब्द से उद्भूत ध्वनि अथवा नाद नाम से अभिव्यक्त शब्द की स्थूलता को हम अपने कानों से माप सकते हैं। यह स्थूल शब्द वस्तुतः प्राणमूर्ति है। प्राणमूर्ति शब्द को प्राचीन वैयाकरणों ने बड़े यत्न से मापा था।

प्राणमूर्ति शब्द की माप प्राचीन आचार्यों ने दो प्रकार से की थी। एक माप मात्राओं द्वारा होती थी। देवनागरी लिपि से परिचित एक शिशु भी मात्राओं का कुछ न कुछ रहस्य अवश्य जानता है। अधिक रूप में भाषा में परिचित व्यक्ति ह्रस्व, दीर्घ, एवं प्लुत तीनों मात्राओं का भेद समझता है तथा कभी कभी वह यह भी अनुभव करता है कि ह्रस्व से न्यून मात्रा भी व्यवहार में संभव है। यह मात्राओं द्वारा की गई माप प्राकृत-ध्वनि कही जाती रही है क्योंकि उसका सम्बन्ध मनोमूर्ति शब्द से प्राकृतिक अथवा स्वाभाविक ही रहता है। मात्राओं द्वारा मापे हुए शब्द का भी विषय अथवा विश्लेषण प्राचीन लोगों ने किया था। एक ही ह्रस्व ध्वनि द्रुत गति से बोली जाए, मध्य गति से बोली जाए, तथा विलंबित गति से बोली जाए तो वह मात्रा में समान रहती है पर प्राकृत ध्वनि से कुछ अलग-थलग जा पड़ती है। यही बात दीर्घ एवं प्लुत मात्राओं द्वारा मापी ध्वनियों की द्रुत, मध्य, एवं बिलंबित गतियों के कारण हो जाया करती है। इस भिन्नता के कारण प्राकृतध्वनि जिस रूपान्तर में सुनाई पड़ती है, उसे वैकृत ध्वनि कहा जाता है। वैकृत ध्वनियां प्राणमूर्तिमयी प्राकृत ध्वनियों से सम्बद्ध रहती हैं। उनका एक दूसरे के साथ जो प्रकृति विकृति भाव है उसे सर्वथा व्यवहार द्वारा जाना जा सकता है। व्यवहारसिद्ध वैकृत ध्वनियों का शास्त्रीय महत्व इस युग के ध्वनिविद के निष्णातों ने स्वीकार कर लिया है क्योंकि बिना ऐसा किए अपभ्रंश ध्वनियों को शास्त्रीय रूप दे सकना संभव न था। वैकृत ध्वनियों को यदि इस विचार-चर्चा में स्थान न दें तो मनोमूर्तिमय स्फोट शब्द तथा प्राणमूर्तिमय ध्वनि अथवा नाद शब्द ही दो ऐसी सीमाएं हैं जिनके मध्य में वाणी का प्रवाह बहता रहता है। वक्ता में इस वाक्प्रवाह का रूप स्फोट से उद्भूत हो कर नाद में परिणत होता है पर श्रोता में नाद का रूप पहले पहल साक्षात्कार का विषय बनता है और उसकी चरम परिणति स्फोट में होती है। कुछ अधिक स्पष्ट रूप में कहें तो तत्त्व की बात यह है कि हमारी वाणी जो मुख्यतः स्फोट रूपिणी है वही वक्ता से श्रोता में प्रविष्ट होती है। नाद इस प्रक्रिया में सहायक तत्व है। योगियों को इस सहायक तत्त्व की अपेक्षा नहीं रहती और इसी लिए वे मनोमूर्तिमय स्फोट का साक्षात्कार बिना नाद की सहायता के ही कर लिया करते हैं। व्यवहार में स्फोट एवं नाद दोनों की अपेक्षा होती है तथा वाग्व्यापार के प्रवाह को चार बिन्दुओं पर पकड़ा जा सकता है। ये चार बिन्दु हैं—चिन्तन, भाषण, श्रवण तथा अवबोधन। चिन्तन एवं भाषण का क्षेत्र उत्तम पुरुष के व्यापार से व्याप्त रहता है तथा श्रवण एवं अवबोधन की क्रियाओं का आश्रय मध्यमपुरुष हुआ करता है। नाद यदि स्फोट से रहित होता तो वह एक अर्थहीन तत्त्व होता तथा स्फोट को यदि नाद का आश्रय न मिला होता तो वह सार्थक तत्त्व होते हुए भी अपने अर्थ को व्यक्त न कर पाता। स्फोट एवं नाद के रूप में प्रवर्तमान शब्द का मेघों की गड़गड़ाहट, पवन की सर-सराहट, निर्झरों के कलकल-रव जैसे शब्द से जो भेद है, उसे हम सब जानते हैं। इन अव्यक्त ध्वनियों में स्फोट के संस्पर्श से रहित केवल नाद है। नाद से रहित स्फोट हमारे मनोजल्प के रूप में आत्मनिष्ठ होता है और वही अर्थबोधिका वाक् का प्रवर्तक होता है।

स्फोट एवं नाद के आधार पर अर्थाविबोधिनी वाक् को प्रतिष्ठित कर भर्तृहरि उसके आदि पर विचार नहीं करते अथवा इस प्रकार की विचार चर्चा के आरम्भ को खोजना व्यर्थ समझते हैं जो वाक् बोध का ही परिणाम है, उसका आदि बिन्दु वही है जो आदि बिन्दु बोध या ज्ञान का होता है। बोध अग्नि के समान व्यापक तत्त्व है, वह तेज के रूप में, जैसे अग्नि की व्यंजना होती है वैसे ही श्रवणगम्य वाक् के रूप में परिस्थिति वश प्रकट हो जाया करता है। उसका आदि कहां पर हुआ और उसकी परम्परा कैसे चल पड़ी यह सब जानना-बूझना एक बड़ी समस्या है। वाक् के प्रस्थान का प्रथम बिन्दु खोज पाना एक असम्भव कार्य है तो भी आधुनिक भाषा-विज्ञान ने इस दिशा में कुछ यत्न किया और वह अब तक वाक् के विभिन्न स्कन्धों का पता लगा कर थक गया है। इस समय वाग् विद्या का क्षेत्र फिर उन्हीं उपादानों के परिष्कार में तल्लीन हो गया है जिन्हें प्राचीन शिक्षाशास्त्र के प्रवर्तकों ने जुटाया था पर अन्तर इतना हुआ है कि अब ध्वनि का ग्रहण तथा उसके माप के लिए साधन केवल असहायक कान नहीं है प्रत्युत अनेक यन्त्र इस विषय में अपूर्व सहायता करने लगे हैं।

वाक्-चक्र के विविध परिवर्तन जो हुए हैं तथा जो प्रतिदिन हो रहे हैं, उनको दो राशियों में विभक्त करके विचारने का मार्ग भर्तृहरि से बहुत पुराना है। पहली राशि में शब्दों को तथा दूसरी राशि में अपशब्दों को समाविष्ट किया जाता है। पातंजलि इस प्रकार के वर्गीकरण को स्वीकार कर आगे बढ़ते हैं। भर्तृहरि के युग में शब्द-राशि को संस्कृत तथा अपशब्दराशि को प्राकृत कहने की परम्परा चल पड़ी। संस्कृत को बोधक शब्द माना गया था तथा प्राकृत में संस्कृत के माध्यम से बोधकता स्वीकार की गई थी पर यह केवल एक पक्ष था। आज संस्कृत ग्रन्थ का हिन्दी भाषा के माध्यम से प्रवचन किया जाता है जिसकी समीक्षा यदि अर्थबोधकता के आधार पर करें तो कहना होगा कि संस्कृत में अर्थबोधकता इस युग में साक्षात् नहीं रही है। प्राकृत की अवस्था उससे भी गई गुजरी हो गई है। आज नाटकों के प्राकृत पाठ्य को संस्कृत छाया के सहारे ग्रहण कर हिन्दी भाषा के माध्यम से प्रकाश में लाया जाता है। जो कार्य हिन्दी भाषा के द्वारा हिन्दी भाषी क्षेत्र में होता है, वही वंग एवं महाराष्ट्र प्रान्तों में वंगभाषा तथा महाराष्ट्र-भाषा द्वारा संपन्न किया जाता है, विदेशों में वही कार्य-वैदेशिक भाषाओं के द्वारा सिद्ध हुआ करता है। इन निदर्शनों को दृष्टि में रखते हुए संस्कृत की साक्षात् अर्थ बोधकता पर एक प्रश्न चिन्ह लग ही जाता है। भर्तृहरि का युग भी बहुत कुछ आज के जैसा था। उस युग में प्राकृत में साक्षात् अर्थबोधकता संस्कृत से अधिक थी और नाटकों में अशिक्षित पात्रों का पाठ्य प्राकृत में इसी लिए रखना पड़ता था। व्यवहार की इस अवस्था के कारण उस युग में कितने ही लोग ऐसे थे जो प्राकृत को मूलवाणी मानते थे तथा उसी को संस्कारों से सुपरिष्कृत हो जाने पर संस्कृत कहना ठीक समझते थे। मध्यस्थ लोग भी थे जो संस्कृत एवं प्राकृत की धाराओं को साथ-साथ बहते देख रहे थे पर पुरानी स्थिति की ओर जाकर वाद-विवाद को बढ़ाना नहीं चाहते थे। संस्कृत एवं प्राकृत शब्दों को यदि शिष्ट एवं अशिष्ट उच्चारणों कि परिधि में ही रख कर ही परीक्षा करें तो संस्कृत मूल तथा प्राकृत को तद्भव मानना होगा। प्राकृत ग्रन्थों की व्याख्या आज इसी मार्ग से की जा रही है।

भर्तृहरि ने संस्कृत और प्राकृत की इस सापेक्षता को ध्यान से देखा था और संपूर्ण वाङ्मय के भीतर वेद को सर्वोपरि स्थान देकर एक श्रोत्रिय ब्राह्मण के रूप को प्रकट किया था। वाक्य-पदीय के प्रथम कांड में हम भर्तृहरि का दार्शनिक रूप देखते हैं। उनके अनुसार वाणी को जीवन प्रदान करने वाला तत्त्व स्फोट है जो बोध या चैतन्य का ही एक आकार है। दूसरे कांड में वे वाक्यतत्त्व का विचार करते हैं तथा तीसरे कांड में पदों को लक्षणानुसार व्यवस्थित करते हैं। इन अन्तिम दो कांडों के विषय के आधार पर ही उन्होंने अपने ग्रन्थ का नाम वाक्य-पदीय रखा है। इन दोनों कांडों की अपेक्षा प्रथम कांड अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसी में स्फोट का प्रतिपादन है जो वाणी को बोधरूप से अभिन्न मानता है, वाणी को ही ब्रह्म के रूप में निरूपण करता है तथा वाणी के विवर्त के रूप में इस संपूर्ण जगत को देखता है।

[राजनिवास, राजगढ़ रोड, सोलन,
हिमाचल प्रदेश।]

"हर भाषा एक मन्दिर है जिसमें उसे बोलने वालों की आत्मा निवास करती है।"

होम्ज़

कहलूरी उप-भाषा में संस्कृत के शब्द

—आचार्य शुकदेव शर्मा

बहुत पहिले हम पढ़ा करते थे कि हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी की सम्पन्नता प्रादेशिक भाषाओं से होगी । उस समय उन विद्वान विचारकों की बातें शायद अन्य प्रदेशों के लोग समझ लेते हों परन्तु हम पहाड़ी लोग अब उसे हृदय में खूब गहराई से समझने लगे हैं । हिमाचल सरकार के कर्णधारों का हम हृदय से धन्यवाद करते हैं कि उन्होंने पहाड़ी भाषा का नारा देकर एक प्रदेश की आत्मा को जगाया है । हमारे इन हरे भरे पहाड़ों में बहुत बीते हुए ऋषि युग की अमर आत्माए अपनी संस्कृति और संस्कारों के साथ आज अंगड़ाई ले चुकी हैं और पहाड़ी संस्कृति की महक सारे राष्ट्र में आ रही है । इस पहाड़ी भाषा के घोष ने एक आत्मबल को जगाया है और हमें वे दिन याद हैं जब हम पहाड़ी शब्द एक घृणा, तिरस्कार एवं उपेक्षा का पर्याय माना करते थे। आज हम देख रहे हैं कि यह पहाड़ी विशेषण हमारा गुणवाचक हो चला है और हम इस से स्वाभिमान अनुभव करने लगे हैं । अपनी मां के दूध के साथ हमने भी केवल भौतिक शरीर पर असर डालने वाले तत्त्व ही नहीं पिये हैं किन्तु एक मन और आत्मा पर अमर संस्कार भी पिये हैं जो कि हमारी तथा हमारे सारे राष्ट्र की एक सम्पत्ति है आज पहाड़ी भाषा के द्वारा ये राष्ट्र की सम्पत्ति वाले हमारे संस्कार जाग उठे हैं ।

कोई भी भाषा तथा उप-भाषा अपनी प्रकृति के कारण ऐसी होती है कि उसके क्षेत्र में विदेशी भाषा का विद्वान् अपने दूरदराज़ की भाषा से पूर्णतया व्यवहार कर ही नहीं सकता है। हमारे बिलासपुर में या हिमाचल के दूसरे भागों में जो वस्तुएं प्रकृति ने पैदा कर रखी हैं और परम्पराओं ने उनको जो-जो संज्ञाएं दे रखी हैं वे उस विदेशी भाषा के विद्वान् को विवशता से कबूल करनी ही पड़ेंगी नहीं तो वह वहां लोकयात्रा कर ही नहीं सकता है ।

प्रस्तुत निबन्ध में मैंने बिलासपुरी जन समाज में बोले जाने वाले कुछ ऐसे शब्दों को दिखाना है जिनके लिए हमें अमरकोष के पन्ने नहीं बदलने पड़ते हैं, ना ही कई शब्दों एवं विभिन्न स्थितियों के पर्याय हमें वहां मिलते ही हैं । हमें यह जानकर बड़ा ही आश्चर्य होता है कि उन शब्दों के लिए हमें अपढ़ कहलाने वाले जन समाज की ज़बान को समझना होता है और उनके मूल-स्रोतों को संस्कृत के प्रकृति-प्रत्ययों से मिलाना होता है ।

इस प्रकार उनके संस्कृत रूपान्तर नहीं परन्तु संस्कृत की कई एक आश्चर्यजनक तत्सम स्थिति शताब्दियों से विभिन्न बोलियों में देखने को मिलती ।

मैंने कई एक स्थलों में व्याख्याकारों को तथा कोषकारों को स्खलित होते पाया है परन्तु वे शब्द हमारी उप-भाषाओं के जानकारों को सुगमता से मिल जाते हैं। मैं एक उदाहरण देकर स्पष्ट करना चाहूंगा कि हमें उप-भाषाओं के शब्द-ज्ञान के बिना कितनी व्यावहारिक गलतियों का सामना करना पड़ता है। कालिदास उपमा के लिए अनुपम तो हैं ही। उनके प्रसिद्ध काव्य रघुवंश के 2/29 में—

सपाटलायां गवितस्थिवांसंधनुर्धरं के शरिणं ददर्श।
अधित्यकायामिव धातु मय्यां लोध्रद्रुमं सानुमतः प्रफुल्लम्।

यहां पर नन्दिनी गाय के ऊपर बैठे हुए शेर का कवि ने वर्णन किया है। कुछ व्याख्याकारों ने पाटल का अर्थ 'गुलाब के फूल के रंग की गाय' यह किया है जो कि सर्वथा गलत है। क्योंकि पुष्पविद्या के विशेषज्ञों ने गुलाब के फूल को यद्यपि अति प्राचीन काल से भारत में उत्पन्न हुआ माना है तो भी 'पाटला' शब्द का अर्थ 'गुलाब जैसे रंग की' ऐसा कई विद्वानों ने किया है। श्री बी०पी० पाल जो कि भारतीय गुलाब समिति के अध्यक्ष हैं, लिखते हैं कि गुलाब एक भारतीय फूल है और इसकी कुछ किस्में विदेशों से भारत में आयी हैं। वे गुलाब के संस्कृत के पर्याय (1) तरुणी पुष्प (2) अतिमञ्जुल (3) सीमांतिक लिखते हैं। मैं यहां यह दिखाना चाहता हूं कि हम लोगों को कई संस्कृत हिन्दी आदि शब्दों के अर्थ हमारी उप-भाषाओं में मिल सकते हैं जिस ओर कि विद्वान् लोगों का ध्यान जाना बड़ा ही आवश्यक है 'पाटल' एक फूल हमारे बिलासपुर में मिलता है हम उसे "पाडलया रा फुल्ल" कहते हैं। पुष्प-विद्या विशेषज्ञों के मत में गुलाब के रंग एवं जातियों में बहुत पहिले से ही विभिन्नता पायी जाती है। आज की विद्या ने तो उसमें बहुत बड़ी वृद्धि कर डाली है। इसमें यदि वर्णसंकरता बहुत पहिले से हो तो उपमा के धनी कालिदास का शब्द विन्यास ठीक नहीं बैठता। इधर पाटल जिसे बिलासपुरी में "पाडलया" कहते हैं सर्वथा शुद्ध है और यह संकीर्ण भी नहीं हुआ है अतः हमें ऐसा विचारने पर अर्थ की पटरी ठीक बैठी दीख पड़ती है कि 'पाडल के फूल' जैसे रंग वाली गाय पर बैठे शेर को दिलीप ने देखा। यदि ऐसा हो तो यह प्रसिद्ध पाटल पुष्प जो कि संस्कृत साहित्य में हमें बहुत जगह मिलता है हमारे द्वारा गलत समझा तथा समझाया जा रहा है। पाटला शोक वकुलैः कुन्दैः कुरु वकैरपि भागवत 4 । 6 । 14 में भी यह आया है।

यह एक नमूना मात्र है अतः इसके सिवाय हमें अन्यत्र भी हमारी उपभाषाओं में प्रचलित शब्दों से अपने राष्ट्र भाषा तथा प्राचीनतम संस्कृत भाषा के रूपों को समझना और उन्हें समृद्ध करना है। इसमें कोई शक नहीं कि हम पहाड़ी लोगों को यहां की अनगिनत तृण-औषधि जड़ी-बूटी तथा जीव जन्तुओं से वास्ता होता है अतः स्वाभाविक ही है कि हमारा कोश विशाल होगा और यह हमारी राष्ट्र-भाषा तथा संस्कृत भाषा का सम्पर्क-कोश होगा जो इनको एक प्रकार से संग्रह तक का रूप देगा इसमें जो लोग इस विचार के रहे हैं कि संस्कृत का शब्दकोष पूरे का पूरा उसके वर्तमान जीवित साहित्य में ही है वे सर्वथा भारी भूल में है। भारतीय साहित्य ने हजारों वर्षों से भारी चोटें सही हैं और उसका जो रूप वर्तमान में है वह बहुत ही थोड़ा है और यदि यह

मान भी लिया जाए कि वही पूरा है तो भी कोई भी साहित्यकार ऐसा होता नहीं है जिसको कि यह अभिमान हो सके कि वह जो कुछ लिख रहा है उसमें वह सारे शब्दों को प्रयुक्त कर सका है। यहां पर भगवान् पांतञ्जलि का यह वचन सर्वथा समझने योग्य है कि–

वृहस्पतिरिन्द्राय दिव्यं वर्ष सहस्त्रं शब्दानां शब्दपारायणं प्रवोचनान्तं जगाम ।

वृहस्पतिश्च प्रवक्ता इन्द्रश्चाध्यता, दिव्यं वर्ष सहस्त्रमध्ययन कालो न चान्तु गजाम, किम पुनरद्यत्वे । य : सर्वथा चिरजीवति वर्ष शतं जीवति ।

भाव यह है कि– एक-एक शब्द को यदि उसके विभिन्न रूपों में बोलने लगें तो वह सर्वथा असम्भव है क्योंकि ऐसी बात सुनी जाती है कि वृहस्पति ने इन्द्र के लिए देवताओं के हजार वर्ष तक शब्दों के प्रत्येक रूप को पढ़ाने का काम शुरू किया था परन्तु वे उसको समाप्त नहीं कर पाये। जरा सोचिए कि वृहस्पति जैसे विद्वान् प्रवचन कर रहे हो और इन्द्र जैसा शिष्य पढ़ने वाला हो तथा पढ़ने की अवधि भी देवताओं के हजार वर्ष तक की हो और तिस पर भी वे समाप्त न कर पाये। फिर आजकल की तो बात ही क्या है? जब कि जो कोई लम्बी आयु जीता है वह मुश्किल से सौ वर्ष ही जीता है। मुझे ये सारी बातें इसीलिए लिखनी पड़ रही हैं कि हमारे संस्कृतज्ञों में एक भ्रान्ति काम कर रही है कि वे वर्तमान कोशों को ही पर्याप्त समझ कर चलते हैं ऐसा कहते सुने जाते हैं कि :–

नव सर्गगते माघे नव शब्दों न विद्यते :

अर्थात् माघ काव्य के नव-सर्ग (नौसर्गो) के बाद संस्कृत में नव शब्द (नया शब्द) शेष नहीं बचता यह बात किसी भी अतिशयोक्ति का अच्छा उदाहरण है। हां माघ नये-नये शब्दों के प्रयोग में दक्ष थे यह ही इसका भाव लेना चाहिए।

कभी मैंने शिमला से प्रकाशित होने वाली संस्कृत मासिक पत्रिका दिव्य ज्योति में इसी विषय से सम्बद्ध एक छोटा सा लेख दिया था । पहाड़ी उप-भाषाओं में संस्कृत शब्दावली सहस्त्राब्दियों से सुरक्षित है इसे दिखाना हमारा ध्येय है । पहले विद्वान् लोगों से यह आग्रह करना है कि वे देखें कि संस्कृत कोष कितने अपूर्ण हैं तथा हमारी पहाड़ी भाषा का अपना कोष कितने ऊंचे पहाड़ों जैसा सम्भव हो सकता है। मैं कुछ शब्दों के प्रयोग के उदाहरण भी यहां दे रहा हूं इसमें हमारा यह आग्रह नहीं है कि संस्कृत शब्दावलि केवल विलासपुरी में ही लहरा रही है परन्तु आशय यह है कि हमारी ये उप-भाषाएं कितनी और कहां-कहां कैसे शब्दों के रूप में अनन्तकाल से चले आ रहे प्रवाहों को संगृहीत किए हुए है, यह हम लोग जान लें तथा संस्कृत जैसी भाषा की समृद्धि के लिए भी ये हमारी बोलियों में कितने काम आ सकती है यह दिखाना मात्र है । विश्वास है कि विद्वान लोग इन सारी बातों को स्वीकार करके इस दिशा

में अपनी प्रखर मति को प्रेरित करेंगे और भाषा विभाग के शब्द संग्रह के वर्तमान पर्व पर वे सहयोगी होकर पुण्य लाभ करेंगे। मैंने जहां–जहां आवश्यक समझा है वहां–वहां संस्कृत व्याकरण के मूल प्रकृति–प्रत्यय भी दिखाए हैं ताकि हम यह जान सकें कि हमारी उप-भाषाओं में ये सारे संस्कार कितने अमर हो कर बैठे हैं। मुझे कई बार आश्चर्य भी होता रहा कि हम अपनी बोली के कई शब्दों को संस्कृत के अपने ज्ञान के अनुसार जाने हुए शब्द का अपभ्रंश कह कर मन को समझाते रहे हैं। परन्तु देखने पर प्रतीत हुआ कि हमारी बोली में वे शब्द जो हम बोलते हैं मूल संस्कृत के ही हैं और यदि उनमें कुछ विकार आया है तो उसका मूल शब्द वह नहीं जिसे कि लोग कहते हैं परन्तु वह अन्य ही निकला। उदाहरण के लिए संस्कृत के 'बिभीतक' शब्द को ही हम अपभ्रंश में "भेड़ा" या बहेड़ा समझते रहे हैं जब कि उसका मूल शब्द "बहेड़क" निकला है। मैं कई शब्दों को देखकर इस विचार का हो गया हूं कि हमारी पहाड़ी उपभाषाएं संस्कृत के मूल प्रकृति–प्रत्ययों के अधिक समीप हैं न कि खड़ी बोली आदि। जहां मुझे जंचा है मैंने उसके संस्कृत के उदाहरण भी दिए हैं ताकि "वैद्यक" आदि ग्रन्थों को समझने में हमारी उप-भाषाएं कितनी सहायक हैं यह बात मन में घर कर जाए। मैं समझता हूं कि मुझे ऐसी आशा करने का सर्वथा अधिकार है कि विद्वान् लोग अपनी मां की गोद में सीखी इन उपभाषाओं के महत्व को समझें तथा इस ओर वे कमर कस कर जुट जाएं। नीचे दिए जा रहे उदाहरण बहुत ही कम ध्यान से सोचे गये हैं और संख्या में अत्यल्प हैं यहां बोले जाने वाले हर शब्द पर बहुत सोचना तथा कार्य करना अपेक्षित है। यहां नीचे विभिन्न शब्द समर्पित हैं जिनके मूल रूप या तो हज़ारों वर्षों से यथा-वत् हैं या फिर साधारण से बदले हैं, जैसे :–

हिन्दी	बिलासपुरी में	विवरण
दिन में	दिनें	दिन+ङि
घर में	घरें	घर+ङि= घर शब्द गृह का अपभ्रंश नहीं है यह शुद्ध संस्कृत का है।

'वह' के अर्थ में पाणिनि व्याकरण में 'तद्' और 'त्यद्' ये दो शब्द आए हैं इनके कर्त्ता में रूप सः और स्यः ये बनते हैं संस्कृत में विसर्गों को ओ करने का विधान है और बिलासपुरी में हम इनको यथावत् देखते हैं 'सः गयीरा' या 'स्यो गयीरे' दोनों के अर्थ वह हैं।

पिता, राजा, पुत्र, नीर, कजूस, कुण्ड, नदी आदि शब्द तो तत्सम रूप में हमें अन्यत्र भी मिलते हैं अतः इनकी चर्चा यहां करनी नहीं है परन्तु यह देखिए संस्कृत के मूल शब्दों से बिलासपुरी में रंग बदलते हुए सुन्दर रूप:–

हिन्दी	बिलासपुरी में	विवरण
म	हौं	यह संस्कृत के अहम् से थोड़ा सा बिछुड़ा है।
आकाश से	गासा ते	आकाशात् तत्सम से बिगड़ा है।
कहां से आया	कुता ते आया	कुतः आयातः से कितना मिला है।

हिन्दी	बिलासपुरी में	विवरण
भूमि पर	भूइयां	संस्कृत के भूम्यां से मिलाइए।
मुझे	मिजो	यह मह्यम् शब्द से बिगड़ा है।
तुझे	तिज्जो	यह तुभ्यम् से हाथ मिला रहा है।
कल	कल	यह कल्य का अपभ्रंश है–देखिये भागवत 4-24-78 में ।
कुबड़ी	कुबड़ी	यह कूवरी शब्द से बना है।
दिन में भी	दिनें बी	यह संस्कृत के दिनेऽपि का साथी है।
रात को जागते रहना	जागरा	यह शुद्ध संस्कृत शब्द के जागृ+घञ्+टाप् में बना है।
टोली	जात	यह जाति का विकार नही किन्तु शुद्ध संस्कृत शब्द है।
व्यभिचारी	जार	यह तत्सम है जृ+घञ् से बना है।
तारा	तारा	यह शुद्ध रूप है तृ+णिच्+अच् से बना है।
चालू सिक्का जो चमकदार हो।	रोक	यह शुद्ध संस्कृत शब्द है रूच+घञ् से बना है ऐसा सिक्का जो खोटा नहीं चमकदार है और चालू है, उसे कहते हैं। देखो ऋग्वेद दिविक्षिदातेरूचयन्त रोका: 3–6–7 में।
घरवाली	ग्रीणी	यह गृहिणी का बिगड़ा रूप है।
जंगल की आग।	दौं	यह दावाग्नि का एक विकार है।
देवर	देवर	पूरा तत्सम ।
बड़ा	जेठया जेठा	यह ज्येष्ठ का विकार है।
काम में टाल-मटोल करने वाला।	मस्करा	यह संस्कृत के मस्कर: से मिलता है मस्क्+अर से बना है देखो भट्टि काव्य 5–63 में उदाहरण है।
प्राण त्याग की तिथि।	खयाह	यह संस्कृत के "क्षयाह" का एक थोड़ा बिगड़ा रूप है।
अंगार	अंगार	यह भी तत्सम शब्द है।
अंगारे का टुकड़ा	फुलंग	संस्कृत के स्फुलिंग शब्द को इस से मिलाइए।
"	मील	यह उल्मुक शब्द का विकार है।
अच्छा	अच्छा	यह न+छा+क से बना है। संस्कृत में अच्छा शब्द है।
घुन	घुण	यह इसी रूप में संस्कृत में है।
अचानक किसी क्रिया का हो जाना।	निभिल्ल	यह निर्भील नि+भी+ल्य+क से बना है–देखिए मेदिनी कोष में।

हिन्दी	विलासपुरी में	संस्कृत विवरण
चोट से खून का जहरीला हो कर नीला हो जाना	गरी जाणा	संस्कृत में गृ+अप् से गर शब्द बना है इसे जहर कहते हैं। देखो भागवत 6–14–43 गरं ददुः कुमाराय।
जहर	गरल	यह इसी रूप में संस्कृत में है।
गोबर	गोहा	संस्कृत में "गोहान्न" शब्द है विलासपुरी में "घोहान आणा" इस रूप में भी यह चलता है।
पाहुना	परोहणा	यह प्राघुण शब्द के निकट है।

अब मैं अपने मान्य पाठकों को यहां की हरियाली की सैर कराना चाहता हूं जो कि हमारी बहुत बड़ी संपदा है। यहां अनगिनत तृणों के नाम प्रचलित हैं और विश्वास है कि वे अपढ़ लोगों के पास तो अधिकांश रूप से शुद्ध संस्कृत के ही हैं।

नल	नल्	यह नल शब्द के रूप में संस्कृत में है।
तिनका	कक्ख	संस्कृत के कक्ष से विगड़ा है ष को ख बोलने की प्रथा रही है जैसे वर्षा से वरखा आदि।
बचे हुए मोटे तिनके	डुंगर	संस्कृत शब्द कडंगर (कड्+गृ+अच्) से मिलता जुलता है।
पशु	डंगरे	कडंगरीय शब्द के पास है, देखो—मल्लिनाथ कडंगरीय की व्याख्या वृषादयः करता है।
वरन-एक घास	वरू	यह वरू रूप में ही भाव-प्रकाश में आया है।
वीरन	बीरण	यह तत्सम है देखो-वीरणं पाचनं शीतं आदि भाव-प्रकाश में लिखा है।
एक अन्य घास	अलींजी	यह अलींज शब्द के रूप में लब्ध है।
"	दरोढ़ा	दरोढ शब्द संस्कृत में है।
दूब	दरूब	यह दूर्वा शब्द के रूप में आया है।
घास	घा:	यह घास शब्द का विकार है।
पुल्ला	पुल्ला	संस्कृत के पुल्ल शब्द से बना है वातु है पुल्ल+अच्
घास का क्षेत्र	घासणी	देखो ऋग्वेद यच्च पपौच्च घासि 1।162।14 में।
चित्रा	चित्रा	यह चित्रक शब्द का विकार है।
जीरा	जीरा	यह जीरक शब्द से बना है।
दवाई	औखत	यह संस्कृत के औषध् शब्द से विछड़ा है। ष को ख पढ़ने की आदत रही है। औषध वह चीज़ है जो कई औषधियों से बनी हो।
तिल	तिल	यह इसी रूप में संस्कृतग में आया है।

हिन्दी	बिलासपुरी में	विवरण
कंगुनी	कङ्गनी	वैद्यक में यह शब्द कंगुनी रूप में आया है वद्यक में चार प्रकार का कंगनी अन्न कहा है जिनमें पीला श्रेष्ठ है।
मसर	मसुर	संस्कृत में मसूर शुद्ध रूप है। मस्+उरन् इन से बना है।
अलसी	अलसी	यह अतसी शब्द से बिगड़ा है।

धान शब्द को लोग कई धान्य का अपभ्रंश कहते हैं परन्तु यह शुद्ध संस्कृत का है। चरक ने "धानाः पर्पट पुषाधाः", में स्पष्ट धान शब्द लिखा है। भाव प्रकाश में तो इसकी कई प्राचीन दस किस्मों का विवरण आता है। वहां उनको रक्त शालि, शक्ल, पाण्डुक, सुगन्धक, कर्दमक महाशालि आदि भेद से वर्णित किया गया है। इन सभी के संस्कार सम्पन्न रूप यहां पर प्रचलित रहे हैं। सुगन्ध-धान तो शायद वासमती को ही कहते होंगे। लेख का कलेवर न बढ़ जाये, अभी थोड़ी सी झांकी बिलासपुरी जन-जीवन के केन्द्र कृषि और कृषक की भी दिखानी शेष है। मुख्य काव्य जो यहां जन-जीवन से अचानक ही आदि कवि की तरह निकलता है वह है यहां की विभिन्न वर्षाएं। इन वर्षाओं को हम 'वत्तर' कहते हैं और ये वैदिक "वृत्र" ही है जिनके गीत वेद और पुराणों में गूंजते हैं। हमारी ये 'वत्तर' भी अनायास वाणी को कवितामय बना देती है। वत्तरों के यहां नाम पड़े हैं और ये नाम निश्चित तिथियों के हैं। मुझे यहां ऐसे स्थान से यह लेख देना पड़ा है कि इन वत्तरों का कलेण्डर ठीक रखने वाले निपट साधु किसान यहां मिले नहीं अतः मैं उनका नाम भर लिख कर ही रुक रहा हूं। पहली वत्तर है—इसे बिलासपुरी में 'वढ़ोतर' कहते हैं, शायद यह वाढ़ोत्तर शब्द से बना हो। दूसरी वृत्र की युद्ध कविता (वत्तर) कनक की लुनाई के बाद होती है इसे "लुणोत्तर" कहते हैं। संस्कृत शब्द लूनोत्तर इसका मूल है। फिर कड़कती जेठ की जवानी में शायद हमारी वत्तर मृगसन्दायी आती है, रेगिस्तान में तरसने वाले हिरण इन दिनों कुलांचे भरते होंगे, मर भी जाते होंगें और उनको पानी नहीं मिलता होगा किन्तु बिलासपुरी भूमि तो हरी भरी है हम उन दिनों भी वृत्र युद्ध धरती पर देखते हैं और वेदों की ऋचाओं की तरह ही वैसे ही रंग ढंग से उस का स्वागत करते हैं। अन्तिम वत्तर को छल्लाड लोई कहते हैं और उसके बाद हमारी धरती पर मानसून आ जाती है। अब आइये किसान के औजारों को देखें, वहां वह कितनी शुद्ध संस्कृत बोलता है? मैं इन के हिन्दी रूपान्तर नहीं दूंगा और वे हैं भी नहीं, परन्तु संस्कृत शब्दों से उन्हें मिलाऊंगा—

हल :– संस्कृत में हल शब्द है यह हल का मूल भाग है हल्+अच् से बना है। हल यह संस्कृत के हल नपुं0 लिंग से बना है, हल के अगले भाग को कहते है।

हलाठी :—हल+ऊढी=हलोढी शब्द संस्कृत में है। हल की पूंछ को कहते हैं, क्योंकि यह हल को उठाती है।

फाल:–संस्कृत में फाल शब्द आया है। फल्+घञ् से बना है। दिव्य तत्व में लिखा है कि "आयसं द्वाद्व शपलं घटितं फाल मुच्यते" अर्थात् 12 पल भर लोहे का घड़ा

हुआ फाल होता है। पल कितना होता था? इसके बारे में विभिन्न मत हैं। भारत में माप तौल की एक साधारण प्रथा नहीं थी अतः पल को कहीं तीन तोला का माना है, कहीं चार तोला का और कहीं आठ तोला का भी माना गया है।

फल्यूड़ी :—"फालोढ़ी" संस्कृत शब्द है यह लोहे के फाल को पकड़ने वाली एक लकड़ी होती है।

ओग :— यह "ओध" शब्द से बना है। हल की पूंछ को हल से पकड़ने में सहायक होता है।

जुंगड़ा :— य को ज बोलते आए हैं। युगोढ शब्द और युग शब्द दोनों इस अर्थ में आये हैं।

प्रैण–प्रैठ :— मुझे ऐसा लगा है कि यह प्रेरण शब्द से बना है। किसान के हाथ में छड़ी होती है जिससे कि वह बैलों को हांकता है।

लोहालु –लोह शब्द लू+ह से बना है। किसी वस्तु के काटने या छेदने वाली धातु को लोह कहा जा सकता है। चान्दी का पूरा नाम चन्द्र–लोह है। लोहालु में **लोह** + आलुच् है। यह फाल का पर्याय है।

हलोढ :— यह शुद्ध बिलासपुरी शब्द संस्कृत का है। खेत की मिट्टी को हम हल्का करते हैं तब उसे हलोढ कहा जाता है –हल+ऊढ यह संयोग है। मक्की के बचपन में हल की यह एक प्रक्रिया है।

म्यान :— अम्मयन संस्कृत शब्द है अप्+मयन से बना है। धानों के खेतों को जब हम पंकीकरण करते हैं तब इस प्रक्रिया का नाम म्यान है।

खिल :— यह तत्सम शब्द है। बंजर भूमि को कहते हैं। नीलकण्ठ महाभारत की व्याख्या में कहते हैं "खिलो नारायणः प्रोक्तः"।

धूड़ :—धूलि शब्द से बना है।

कूहल :—कुल्या शब्द से बना है।

धारा :— संस्कृत में अधार शब्द से बना है। धान के एक खेत का पानी दूसरे खेत को ले जाने के लिए जो थोड़ा सा रास्ता बनाया जाता है उसे कहते हैं।

कुदाल :— यह तत्सम है कु=भूमि को चीरने वाला।

गोढ़ :— गोष्ठ शब्द से बिगड़ा है। गो+स्था+क से बना है। रामायण में "सिंहेन निहित गोष्ठे" यह उदाहरण आया है हिन्दी में पशुघर को कहते हैं।

ताल :— यह संस्कृत शब्द है। तालाब को कहते हैं। भवभूति अपने "अमर काव्य उत्तरराम चरित" में "उत्तालास्त इमे गभीर पयसः" लिखते हैं।

मेंढ़ी :— उस बैल को कहते हैं जो दूसरों का नियंत्रण करता है। यह शुद्ध संस्कृत शब्द है। भागवत में सूर्य को सौर परिवार का मेंढी कहा है। महाभारत में भी विदुर धृतराष्ट्र को उस का दायित्व समझाते हुए उसे मेंढी कहते हैं।

नर :— यह जहां मनुष्य अर्थ में भी चलता है वहां चतुर बैल के लिए भी आया है। नृ+अच् से बना है। अर्थ है जो बैल कृषक को खुश कर देता है।

बलद :– यह संस्कृत के वलीवर्द शब्द से बिगड़ा है।

महेंस :– यह महिषी शब्द से बिगड़ा है। हिन्दी में इसे भैंस कहते हैं। हलायुध कोश जयशंकर जोशी रचित में पृष्ठ 524 पर एक और महत्वपूर्ण बात लिखी है कि महिषी एक औषधि भी है और बिलासपुरी में एक बेल में लगने वाले फलों को हम "महैंस" ही कहते हैं, वैद्यक में उसका उपयोग लिखा है।

मिढा :– भाव प्रकाश में मेंढ़े के पर्यायों में मेढ हुड़, मेष, उरण लिखा है। इन में से मेंढ़ का रूप प्रचलित हैं। पक्षियों में तित्तर, चकोर कुरल आदि शब्द ठीक उसी प्रकृति में पायें जाते हैं जैसे कि संस्कृत में आये हैं। इस श्रेणी में बिगड़े शब्दों की सूची लम्बी जायेगी अत: मैं लिख नहीं रहा हूं।

वृक्षों के नाम मूल संस्कृत के बहुत ही अधिक समीप हैं जिस प्रकार कि :–

तुन्नी :– संस्कृत के 'तुन्न' शब्द से मिलाया जा सकता है।

अंब :– यह 'आम्र' शब्द से विकृत है।

अर्जण :– संस्कृत में प्रसिद्ध अर्जुन शब्द से मिलता जुलता है।

वैद्यक में लिखा है कि "अर्जनस्यत्वचा सिद्धं क्षीरं दद्यात् हृदामये" अर्थात् हृदय-रोग में अर्जुन वृक्ष की छाल में सिद्ध दूध देना चाहिए। इसी प्रसंग में व्यूहल् (व्यूहल), दौगला (दाकल) अंजीर आदि कई नाम मिलते हैं।

इस निबन्ध के अन्तिम चरण में कुछ एक अंग आदि से संबद्ध नाम लिख कर मैं इसे समाप्त करना चाहूंगा। ये नाम बड़े ही रोचक हैं तथा शरीर–विद्या के लिये बड़े उपयुक्त हैं।

मुण्ड :– संस्कृत के मुण्ड से अविकृत अवस्था में है।

सिर :– संस्कृत के "शिरस" शब्द से विकृत हुआ है।

कण्ठ :– यह बिलासपुरी शब्द संस्कृत में यथावत् है।

गभ :– प्राय: "र" को हटा कर शब्दों को बोलने की प्रवृति लोगों में देखी गयी है। निर्मल शब्द को "निम्मल्" कहते हैं। उसी प्रकार संस्कृत के "गर्भ शब्द को बिलासपुरी में गभ शब्द से बोला जाता है।

गल :– संस्कृत में "गल" शब्द से उच्चारण से जुड़ा हुआ है।

झम्याल् :– हिन्दी में जबड़ों को कहते हैं संस्कृत में "जम्वाल" शब्द (जमु– वालच्) से विकार में आया है।

जानु, जिह्वा, ताल् (तालु) दन्द (दन्त), हत्थ (हस्त), अंगुलि (अंगुलि), अक्खि (अक्षि) या अक्ख (अक्ष) तो स्पष्टत: संस्कृत शब्दों से कितने मिलते हैं, यह यहां पर साफ ही है। कुछ और शब्द यहां दिखाने आवश्यक हैं। इस का कारण यह है कि हम संस्कृत में इन का पर्याय ढूंढने के लिए कृत्रिम शब्द संकेत बनाते हैं जबकि उनके पर्याय हमें बिलासपुरी में यथावत् तत्सम के से रूप में मिलते हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :–

सोमसं

मल्ली :– संस्कृत में "मल्लिका" शब्द (मल्लि+कन्+टाप्) आता है उस का अर्थ ढक्कन होता है। हम जानु के ऊपरी भाग को भी बिलासपुरी में मल्ली कह देते हैं। अतः यह शब्द अपने दोनों अर्थों में यहां पर प्रचलित है ।

चुंडा :–यह संस्कृत के "चूडा" शब्द से बिगड़ा हुआ है।

चिच्चु :– यह संस्कृत के "चुचुक" शब्द का विकार है। ये एक नमूने मात्र हैं । स्पष्ट है कि हमारे प्रदेश की कई बोलियों में जो जो शब्द जिन जिन संकेतों को ले कर चले हैं उन के कारण मूल शब्द हमें संस्कृत में विभिन्न रूपों में आते हैं। थोड़ा हमें उन के मूल शब्दों को ढूंढने में प्रयास करना होता है। मैं इस विश्वास का हूं कि हमारी पहाड़ी भाषा का शब्द कोष निस्सन्देह काफी संपन्न संग्रह होगा। इस बारे में हमें व्यापक प्रयास करने होंगे । यह धरती लाखों तृण, वनस्पति तथा औषधियों से भरी पड़ी है जो कि हमारी बहुत बड़ी संपदा है। इन से हम लोगों का हर घड़ी का सम्बन्ध रहता है जिस के लिए कि हमें भारी परिश्रम करना है। इनके नामों के बारे में भी एक अलग से लेख लिखा जा सकता है जो कि नमूने भर का हो।

हर भाषा के बारे में यह बात प्रचलित है कि उसे सीखने वाला व्यक्ति जब भाषा पर अधिकार पा जाता है तब वह उस भाषा के अनर्थक कहे जाने वाले अव्यय पदों का सार्थक और सुहावना प्रयोग सम्बन्धित भाषा में करता है । वेद, उपनिषद्, पुराण, एवं इतिहास ग्रन्थों में प्रचलित हमें कई ऐसे अव्यय मिले हैं जो कि बिलासपुरी में बोले जाते है तथा जिन की ओर हमारा ध्यान नहीं जाता है। कभी यदि समय मिला तो इस बारे में पुनः लिखूंगा। संस्कृतज्ञों से प्रार्थना है कि वे अपनी स्थानीय बोलियों का परिचय देने के उद्देश्य से लिखे गये इस निबन्ध के उत्तर में अपनी उपभाषा का रसास्वाद "सोमसी" द्वारा सारे प्रदेश को करायें।

(राजकीय संस्कृत महाविद्यालय,
सोलन ।)

चम्बा के साहो क्षेत्र की कृषि सम्बन्धी शब्दावली

—हरिप्रसाद सुमन

साहो चम्बा नगर के पूर्वोत्तर में बसा एक सुन्दर उपनगर है जो बस द्वारा 19 किलोमीटर तथा पदयात्रा से केवल 8 मील है। इस क्षेत्र में अधिकतर गुज्जर तथा गद्दी आदिम जाति के लोग रहते हैं वैसे साहो उपनगर में ब्राह्मण, सिप्पी, हाली तथा राजपूतों व बनियों के भी कुछ घर हैं।

यहां हाईस्कूल, डाकघर, डिस्पैंसरी, पशु अस्पताल, पटवार खाना, वन विभाग का रेस्ट हाउस, महिला कल्याण केन्द्र, उद्योग केन्द्र तथा अच्छा बाज़ार है। पंचायत घर, ग्राम सेवक हट भी है।

चन्द्रशेखर का प्रसिद्ध मन्दिर है जिसमें एक विशाल शिवलिंग है इसके सामने ही पत्थर की एक कलात्मक विशाल नन्दीगण की प्रतिमा है जो देखने योग्य है। साथ ही गणपति तथा लक्ष्मीनारायण के मन्दिर भी हैं। मन्दिर के आगे विशाल प्रांगण तथा यात्रियों के ठहरने के लिये धर्मशाला भी है। यहां प्रति वर्ष दो बड़े मेले लगते हैं– एक वैशाख 15-16 को "साहो यात्रा" तथा एक भाद्रपद शुक्ल अष्टमी को मन्महेश मेला के दिन रात्रि को जागरण तथा प्रातः नदी पर स्नान करके मन्दिर में शिव दर्शन करके यात्री अपने अपने घरों को जाते हैं। प्रतिवर्ष दोनों मेलों में हज़ारों यात्री सम्मिलित होते हैं।

भाषा–वैज्ञानिकों का कथन है कि हर दो कोस के बाद भाषा बदल जाती है। इस प्रकार साहू क्षेत्र की उप-भाषा में भी कुछ अन्तर आना स्वाभाविक है। प्रस्तुत लेख में साहो क्षेत्र के कृषि क्रिया से सम्बन्धित कुछ शब्दों का दिग्दर्शन कराने का प्रयास किया जाएगा।

शब्द	अर्थ तथा विश्लेषण
1. करशाणी	कृषि
2. खुम्बा, खेत्र, बगड़ी	खेत
3. औधार	खेत में प्रथम बार हल चलाने की क्रिया।
4. जेल	दूसरी तीसरी बार हल चलाने की क्रिया जिस से भूमि नरम होती है।

5. खणारी	कुदाली से बंजर भूमि की खुदाई।
6. बाणारी	बीज बोने की क्रिया।
7. नदारी	निराई गुडाई करके घास निकालने की क्रिया।
8. मल्हेड़ी	खेतों में गोबर की खाद डालने की क्रिया।
9. कामेट	लोगों को खेती के काम का निमन्त्रण।
10. लुणारी	फसल की कटाई।
11. उचोड़ारी	मक्की के भुट्टों को घास से अलग करना।
12. ढुआरी	अनाज की ढुलाई।
13. मचारी	धानी खेतों में पानी छोड़ कर लकड़ी के सुहागे से बैलों को चलाना जिस से खेत कीचड़नुमा हो जाएं।
14. पुणारी	अनाज को भूसे से अलग करना, पुनाई।
15. कुटारी	मक्की को डंडे से कूटना जिससे दाने झड़ जाएं।
16. गाहण	अनाज के ऊपर बैलों को चलाना जिस से घास व दाने अलग-अलग हो जाएं।
17. हलोत्रा	हल।
18. जुंगला	जुआ।
19. कांदल	हल के साथ जुए तक लगी गोल लम्बी लकड़ी।
20. कोकड़ी	हल के साथ हलवाह के पकड़ने को लगी लकड़ी जिसे पकड़ कर बैलों को मोड़ा जाता है।
21. लुहांगी	लोहे का फाल जिस से भूमि खोदी जाती है।
22. कीली	जिससे कांदल को जूए के साथ फिट किया जाता है।
23. कस्सर वलेत्रा	जूए पर रखी रस्सी पशु की आंतों से बना रस्सीनुमा कस्सर।
24. सम्बा	जूए के साथ लगी लकड़ी की 4 फट्टियां जो दोनों बैलों की गर्दन को पृथक रखती है।
25. जोत्तर	जुए व सम्बों के साथ लगी दो पतली रस्सियां जो बैलों के गले में पिरोई जाती हैं।
26. वाणाहर	जो जुताई करता व बीज लगाता है।
27. डाह	सुहागा जिससे जुताई के बाद खेत को समतल किया जाता है।
28. सिया	हल के साथ कांदल को फिट बैठाने के लिये लकड़ी का एक टुकड़ा।
29. भैकू (भैंकड़ाहण)	हथोड़े के आकार का बना एक लम्बा डण्डा जिससे मिट्टी के ढेलों को तोड़ कर नरम किया जाता है।

30. प्रैंण	लाठी जो आगे से नुकीली होती है, बैलों को इसके भय से चलाया जाता है।
31. भित्त	खेत का भीतरी भाग।
32. प्रैड़	खेत का बाहरी भाग।
33. उलाड	खेत के चारों ओर झाड़ियों की कटाई सफाई।
34. मच्च	एक लम्बी गोल लकड़ी से लगा एक लकड़ी का फट्टा जिसे धानी खेतों को कीचड़नुमा करने के लिये चलाया जाता है।
35. मचाहली	मच चलाने वाला आदमी।
36. कुदालू	जो धानी खेतों में कुदाली से खनाई करते हैं।
37. चुपड़ार	जो खेत की मेड़ों को कीचड़ से चुपड़ते हैं।
38. उरह्याण	धान की पनीरी (धान के पौधे)।
39. चकरेडू	धानी खेतों की मेड़ों को बनाने वाले।
40. रोही	धान के पौधे लगाने वाली स्त्रियां।
41. रुहेड्डा	धान की पनीरी को रोहियों के पास पहुंचाने वाला आदमी।
42. रुहणी	जिस दिन धान के पौधे खेतों में लगाये जाते हैं।
43. खौंहलू	15 दिन बाद धानी खेतों में पानी में उगे घास की निराई गुडाई करने की क्रिया।
44. करपाणी रे सन्दे	कृषि का सामान।
45. कुकड़ोत्र	मक्की बोने का समय।
46. कणकोत्र	गेहूं बोने का समय।
47. कुकड़्याला	मक्की के टांडे (घास)।
48. भूह	गेहूं का भूसा।
49. सहेंटा	सरसों का घास।
50. पराली	धान का घास।
51. सैरी	शरद ऋतु में पकने वाले अनाज मक्की, धान, तिल आदि।
52. वाहरिया	गर्म ऋतु में पकने वाले अनाज गेहूं, जौ, चने, सरसों।
53. बी	बीज।
54. अलोत्र	गीली भूमि।
55. घाली	घास की कटाई।
56. घाला	जहां घास काटा जाता है।

57. घुप्राड़ा (घाड़ा)	जहां मक्की का घास इकट्ठा करके बांध कर रखा जाता है ।
58. कुन्नु	धान या भूसे को इकट्ठा करके इस ढंग से रखा जाता है जिससे उस पर वर्षा का प्रभाव न पड़े ।
59. धहड़	धान के घास को इकट्ठा करके लगाना ।
60. कोहली	पानी भूमि के खेत ।
61. ग्रोतड़	पानी न लगने योग्य भूमि ।
62. कुखड़ी (कुकड़ी)	मक्की ।
63. कणक	गेंहू ।
64. धान	धान-चावल ।
65. झुकारा	बिना पानी के धान ।
66. शरहों	सरसों ।
67. माह	माश की दाल ।
68. मुंग	मूंग की दाल ।
69. जौ	जौ ।
70. कोद्रा	कोदों ।
71. छोल्ले	चने ।
72. मौहर	मसर ।
73. मौहरैली	मसर की दाल ।
74. सिहंयूल	चौलाई ।
75. फुल्लण	फुल्लन ।

ग्रनाज बटोरने के उपकरण

76. पड़ा	टोकरा जो लिपा न हो ।
77. डल्ल	टोकरा जो लिपा न हो ।
78. टोकरू	छोटा टोकरा जो गोबर मिट्टी से लिपा हो।
79. किरड़	किलटा ।
80. छञ्झा	किलटा जिसमें पेड़ों के पत्ते जंगल से लाते हैं ।
81. छिक्का	रस्सी से बुना जाल जिस में जंगल से घास लाते हैं ।
82. छिणी (कूड़ी)	भूसा ग्रलग करने वाली लम्बी लाठी ।

ग्रनाज रखने के बर्तन

83. पेडू (ढंढू)	लकड़ियों से बुना ड्रम जिसमें 2 से 15 मन तक ग्रनाज भरा जाता है । ये कई ग्राकार के बनते हैं ।

84. तूण	लकड़ी का बना सन्दूक जिसमें 15 से 20 मन अनाज भरा जाता है ।
85. कंजाल	लकड़ी का बा सन्दूक जिस में 20-30 मन अनाज रखा जाता है इस में 2–3 खाने होते हैं ।

अनाज मापने के बर्तन

86. माणी (कठाली)	काठ का बर्तन जिसमें पंसेरी अनाज आता है ।
87. पैंड़ा	बीस माणी अनाज योग्य बर्तन ।
88. खार	जिसमें 20 मन पक्का अनाज आता है ।

---

89. बीड़	मेंड ।
90. उणारी	एक खेत से दूसरे को पानी जाने का स्थान।
91. मुछैरा	मक्की को जब मूंछें निकलती हैं ।
92. टप्परी	फसल की रक्षा के लिये बैठने के लिये बनाया गया स्थान ।
93. खल	खलिहान ।

साहो क्षेत्र के निवासियों को सुहाल कहते हैं तथा यहां की बोली को सुहाली कहा जाता है । चम्ब्याली से इसकी भिन्नता के कुछ रूप इस प्रकार हैं :

चम्ब्याली	सुहाली
1. कै होरा है ?	कै असा भोरा?
2. भुईंयां वेही जान्दे ।	भुंईयां वैशी गाहन्दे ।
3. कुताहीं चलेया ?	कुदी असा चलोरा ?
4. मैं खेतरा जो जाणा ।	मूं वगड़ी जो गाहणा ।
5. ऐहण पेई माहेरा दाणा नी रेहया ।	अप्पण पै महेरा दाणा अक्क ना रैह ।

(–सुमन कटोर
चम्बा ।)

tharahkardu.in

लाहुल की किराती-कनाशो बोलियाँ—एक अध्ययन

—के0 अंगरुप लाहुली

नृ-विज्ञान शास्त्रियों का कहना है कि मानव की शरीर रचना में भूगोल का बड़ा हाथ होता है। इतना ही नहीं, भूगोल मानव के मानसिक एवं मनोविज्ञान सम्बन्धी चिन्तन प्रणाली को भी प्रभावित करता है। दृष्टान्त के रूप में—यूरोप के उत्तरी भाग के रहने वाले वहां के जलवायु और कठोर प्रकृति के अनुसार उद्यमी और गम्भीर प्रवृत्ति के होते हैं जबकि दक्षिण में भूमध्य सागरीय प्रदेश के निवासी अत्यन्त सरल और अदूरदर्शी स्वभाव के।

ऊपरोक्त सिद्धान्त भारतवर्ष के हम हिमाचली किंवा पहाड़ी लोगों के लिये लागू हो सकेगा या नहीं, यह एक परिचर्चा (गोष्ठी) का विषय है। पहाड़ संस्कृत के पाषाण का विकसित (भाषा-शास्त्र की दृष्टि से) रूप है, जिस का अर्थ 'पत्थर' होता है। पहाड़ शब्द में 'ई' प्रत्यय जुड़ कर 'पहाड़ी' ऊनवाचक संज्ञा बनी है जिस का वाच्यार्थ पर्वत के निवासी या उन निवासियों की बोली से होता है। जहां तक भौगोलिक परिस्थिति के प्राणी-जगत की शारीरिक रचनाओं पर प्रभाव पड़ने की बात है, उसे तो सुगमता से समझा जा सकता है परन्तु इसके मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण पर असर डालने की बात को सभी क्षेत्रों के लिये स्वीकार नहीं किया जा सकता। इसी सन्दर्भ में प्राणिशास्त्र-वेत्ताओं का सर्व-सम्मत सिद्धान्त यह है कि सन्तति पर आनुवंशिकता का प्रभाव होता है। गर्भ धारण काल में जब रजाणु और वीर्याणु का समन्वय सम्बन्ध स्थापित होता है तब उस समय उन अणु-कोषों में आनुवशिकता का निवास हो जाता है। इन आनुवींशकताओं के कारण ही संतानों में माता-पिता के स्वभाव एवं स्वरूप का प्रतिबिम्ब झलकता है। धर्मग्रन्थों में यह संस्कार के नाम से अभिहित है। सारांश यह कि प्रकृति या भूगोल की शारीरिक रचना पर भले ही प्रभाव पड़ता हो परन्तु मानसिक चिन्तन इस के अधिकार क्षेत्र से बाहर है। भारत वर्ष के उत्तर में भद्रवाह से ले कर नेपाल-नेफा तक के रहने वाले चारों ओर पत्थर-चट्टान एवं जंगलों से घिरे रहते हैं। परन्तु इन का स्वभाव पत्थरी, चट्टानी या काष्ठभूत नहीं होता अपितु इस के विपरीत ये लोग बड़े सरल, सुशील और सीधे होते हैं। इसी लिये तो 'पहाड़ी' शब्द ही आज सीधेपन का पर्याय बना हुआ है।

बात रही वाणी पर भूगोल के प्रभाव पड़ने की। भाषा न तो प्राकृतिक देन होती है और न ही वंशानुगत आती है। यह तो एक प्रकार की कला है, जो जैसा सीखता है वह वैसा ही बोलता है। आज भारतीय सभ्य समाज की मातायें अपने बच्चों को प्रारम्भ

में अंग्रेजी शब्द 'टट्-टा' कहना सिखाती हैं जो गर्म जलवायु में पले भारतीय बच्चे अनायास ही सीख जाते हैं। इस से यह सिद्ध हो जाता है कि भाषा (बोली) पर भूगोल का प्रभाव नहीं पड़ता है।

भाषा या बोली

विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा या बोली होती है। इस प्रकार सामान्यतः भाषा या बोली में कोई मौलिक अन्तर भी नहीं होता। भाषा, बोलियों की समष्टि का नाम है और बोली इस की इकाई है। हिमाचली एक भाषा हैं। सिरमौरी, महासुई, कुल्लुई, मण्ड्याली, बिलासपुरी, कांगड़ी तथा चम्बयाली इस की बोलियां हैं। भाषा का क्षेत्र थोड़ा बड़ा होता है तो बोली का संकुचित। मान लो लाहुली (काल्पनिक) एक भाषा है तो गारी (बुनन), पटनी (मनचाती), तिननी (तिनन), तोद्-रंगलोई, शिपी तथा लोहार की बोली इस की इकाइयां होंगी। बोलने वालों की संख्या के आधार पर लाहुल की बोलियों को तीन मुख्य और तीन उप-बोलियों में वर्गीकृत किया जा सकता है वास्तव में वे एक दूसरे से निकली हुई बोलियां नहीं हैं।

बोलियों पर विचार करने से पूर्व यहां की आदिम जातियों के विषय में कुछ चर्चा करनी चाहिये थी परन्तु इस विषय में अभी तक किसी भी विद्वान ने लेखनी नहीं उठाई है। अतः गहन अध्ययन एवं विशेष अनुसंधान के अभाव में कुछ कह या लिख देना इस इलाके के साथ अन्याय करना होगा। यहां की बोलियों, मुखाकृतियों तथा रसम-रिवाजों से भी किसी खास नतीजे पर पहुंचना आसान नहीं है क्योंकि छः विभिन्न भाषा-भाषियों में कम से कम चार जातियां और नौ समुदायों के लोग यहां रहते हैं। यद्यपि ये समुदाय बहुत छोटे-छोटे वर्ग में विभाजित हैं परन्तु इन की सामाजिक व्यवस्था आचार-विचार तथा जीवन-पद्धतियां एक दूसरे से काफी भिन्न होती हैं। विशेषकर विवाह और मृतक संस्कारों के विषय में तो बड़ी ही विविधता है। सामान्य नियम यह है कि लोक-गीत, लोक-गाथा तथा लोकोक्ति आदि लोक साहित्य अपनी अपनी जनपदी बोली में ही होता है परन्तु इस के विपरीत लाहुल का लोक साहित्य बाहर की बोली में उपलब्ध होता है। जैसे, गार वादी के लोक-गीत और गाथा एक उप-तिब्बती बोली में मिलती है तो पटनवादी की अर्ध चम्बयाली और अर्ध कुल्लू-मण्डयाली बोली में संचित होती है। इस प्रकार तोद्-पा बोली का लोक साहित्य लद्दाखी या लद्दाख के सीमावर्ती क्षेत्रों में रहने वाले चरवाहों की बोली में मिलता है। अतः लाहुल के आदिवासी के विषय में कुछ लिखने से पूर्व व्यापक खोज और हज़ार बार सोच लेने की आवश्यकता है तथापि यह तो निश्चित सा है कि यहां के आदिवासी यहां की गुफाओं और जंगलों से विकसित जाति नहीं है बल्कि बाहर से आकर यहां बसी हुई जन-जाति है क्योंकि अविकसित मानव जाति के निवास के लिये यह स्थान अनुकूल और सुरक्षित नहीं है। इस प्रकार लाहुल की प्रत्येक बोली के साथ अपना अपना इतिहास छुपा हुआ है।

(1) यहां की प्रमुख बोलियों में दरिया भागा की पश्चिमी उपत्यका के निवासियों की बोली को 'गारी' बोली कहते हैं क्योंकि यह गार-वादी में बोली जाती है, इस

कोष्ठक के नाम डा0 ज0 अ0 ग्रियर्सन की 'भारत का भाषा, सर्वेक्षण' नामक पुस्तक से उद्धृत हैं।

लिये इस का नाम स्थानवाचक 'गारी' पड़ गया है । गार-त्रादी में शत प्रतिशत बौद्ध परिवार निवास करते हैं तथा इस के प्रतिवासी उत्तर में जंस्कार और लद्दाख, पूर्व में स्पिति में भी बौद्ध और तिब्बती भाषी लोग ही रहते हैं । जिनका लाहुल की बोलियों पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है । यही कारण है कि गारी बोली में सत्तर-अस्सी प्रतिशत तिब्बती शब्द मिलते हैं । गारी ही नहीं लाहुल की अन्य बोलियों ने भी सांस्कृतिक तिब्बती को ही अपनाया है । यद्यपि गारी भाषा भाषी पांच-छह हजार से अधिक लोग नहीं होंगे परन्तु इस का व्याकरण (अलिखित) इतना समृद्ध एवं जटिल है कि अड़ोस-पड़ोस के लोग इसे 'पाषाण बोली' कह कर पुकारते हैं । इस बोली की यह विशेषता है कि इसमें संस्कृत की क्रियाओं की भांति परोक्षभूत क्रियाओं की भी व्यवस्था है । परोक्षभूत उस काल को कहते हैं, जो आंखों के सामने घटित न हुआ हो । जैसे—

परोक्षभूती—रामाः राजा बभूव राम एक राजा था ।
(संस्कृत);

गारी—राम ग्य-पो-ति निन्जी । यह 'निन्जी' क्रिया संस्कृत की बभूव (था) क्रिया का सादृश्य रूप है जो परोक्षभूत की क्रिया का प्रतिपादन करता है । यह भी इस बोली की विशेषता है कि परस्मैपदी अस् (होना) क्रिया के वर्तमान काल में, तीनों पुरुषों के एकवचन और बहुवचन के लिये एक मात्र 'हेन' रूप व्यवहृत होता है। जैसे:—

एकवचन	बहुवचन
गी हेन्—मैं हूं ।	हिंग हेन्—हम हैं ।
हन हेन्—तू है ।	हन् जी हेन्—तुम हो ।
तल हेन्—वह है ।	तल जी हेन्—वे हैं ।

गारी बोली ही की तरह तोद्-पा बोली में भी होना क्रिया 'अस्' धातु के लिये, तीनों पुरुषों और दोनों वचनों में केवल 'यिन' क्रिया का प्रयोग होता है जबकि पटनी में इसके रूप बदल जाते हैं । जैसे:—

तोद्-पा, हिन्दी पटनी

ङ यिन्—मैं हूं—गे शुगा ।	ङ-ञा यिन्—हम हैं—ञेरे शुनी ।
ख्योद यिन्—तू है—क शुना ।	ख्यो-ञा यित—तुम हो—केरे शुनी ।
खो यिन्—वह है—दु शुद ।	खो-ञा यिन्—वे हैं—दुरे शुरे ।

(2) लाहुल की प्रमुख बोलियों में दूसरा स्थान पटनी का आता है । यह बोली दरिया चनाब की उपत्यका पटनवादी में बोली जाती है । इसके बोलने वाले लाहुल की जनसंख्या के आधे से अधिक लोग हैं । इसके अतिरिक्त यह बोली लाहुल के

विभिन्न समुदायों और भाषायी लोगों की आपसी बातचीत का माध्यम भी है। यह अत्यन्त सरल, सुबोध और सुव्यवस्थित बोली है। इस की वाक्य-रचना हिन्दी व्याकरण की भांति पहले कर्त्ता, उसके बाद कर्म तथा अन्त में क्रियायें लगती हैं। पटन वादी के पश्चिमी भाग के निवासियों की बोली यद्यपि 'चम्बा-लाहुली' बोली के नाम से अभिहित है परन्तु यह मुख्य पटनवादी की बोली से बिल्कुल भिन्न बोली नहीं है। सुर-तालों के विशेष प्रयोग के कारण इस क्षेत्र की बोली, पटनी की अपेक्षा कुछ कर्णकटु सी प्रतीत होती है परन्तु यह सर्वथा एक भिन्न बोली कदापि नहीं है। इस का अपना एक अलग अस्तित्व स्थापित करने के लिये इन के पास अपनी कोई शब्दावली भी तो नहीं है। अतः हम इस को एक भिन्न बोली कैसे कह लें। सुरों, तालों तथा वातायनों की भिन्नता तो एक ही भाषा क्षेत्र के दो भिन्न गांव और कस्बों में भी पाई जाती है।

यद्यपि पटनी बोली भारतीय आर्य–भाषा की किसी शाखा में रखी जा सकती थी परन्तु सांस्कृतिक शब्दों के रूप में इस ने भी शुद्ध तिब्बती को अपनाया है। यही कुछ कारण थे कि भाषा शास्त्री डा0 ज0 अ0 ग्रियर्सन ने लाहुल की बोलियों को तिब्बती-बर्मी परिवार के अन्तर्गत तिब्बती हिमालय-शाखा की बोली मान लिया है। इस में सन्देह नहीं कि तोद-रंगलोई बोली को छोड़ कर शेष पांचों बोलियों में चीनी बर्मी भाषा की भांति बड़ी संख्याओं की गिनती में दाशमिक प्रणाली प्रयोग न करके बीस बीस के हिसाब से गिने जाते हैं। जैसे, चालीस के लिये दो बीस और साठ के लिये तीन बीस आदि।

यह एक अजीब सी बात है कि पटनी बोली ने सांस्कृतिक शब्दों के रूप में तिब्बती को तो अविकृत भौतिक रूप में ही अपना लिया है परन्तु गारी बोली के शब्द, जो इन की बोली में दस प्रतिशत मिलते हैं उन्हें या तो खण्डित रूप में या उस में और वर्ण (रूपग्राम) जोड़ कर सम्मिलित किया है, जैसे:—

खण्डित-शब्द

हिन्दी	गारी	पटनी
पानी	सोती	ती।
पक्षी	प्याची	प्या।
पिता	अवा	वा।
घोड़ा	अंगस्	रंगु।
मार्ग	अम्ची	अम्।
श्वेत	रिग्	री।
पांच	ङाई	ङा।
भगिनी	श्रिग	रिङ।
खिड़की	कल्ची	कल।
मुख	अंग्	आ।

विस्तृत-शब्द

चन्द्रमा	ल	लवंग् ।
बरफ	मु	मुग् ।
गधा	करा	कारा ।
केश	क्र	क्रा ।
नीला	तीईं	तीङी ।
सात	निजी	निज्जी ।
मांस	श	शाह् ।
चप्पू	वल	वल्ज्रा ।
रक्त	श्	शुई ।
बूआ	अने	आने ।

(3) लाहुल की मुख्य बोलियों में तीसरा नम्बर तिननी का आता है । यह बोली चन्द्र नदी के तटवर्ती क्षेत्रों के निवासियों की बोली है । यह गारी, पटनी तथा तोद्-रंग-लोई का संमिश्रित रूप है । इस बोली की कुछ क्रियायें तथा कतिपय प्रत्ययों को छोड़ कर अपना शुद्ध रूप तो बहुत ही कम है । लगता है कि प्रारम्भिक काल में इस बोली पर अड़ोस-पड़ोस की बोलियों का इतना प्रभाव पड़ा कि इस की अपनी विकास गति रुक सी गई और यह अनाप-शनाप पड़ोसियों की शब्दावली को ग्रहण करती गई । फलस्वरूप यह एक ऐसी खिचड़ी बोली बन गई जिस का सहज उदाहरण मिलना मुश्किल है । इस के पश्चात् पड़ोसी तिब्बत और जंस्कार से बौद्ध धर्म के प्रचारक जब यहां पहुंचे तो लाहुल की सभी बोलियों में तिब्बती धार्मिक और सांस्कृतिक शब्द मिल गये जो कालान्तर में स्वदेशी शब्द प्रतीत होने लगे। इस मामले में तिननी तो विदेशी शब्दों को अपनाने में एक कदम आगे थी । दूसरी बात तिननी बोली में तिब्बती शब्दों के भण्डार का कारण गोंधला के ठाकुर परिवारों की बोली का साधारण जनता द्वारा अनुकरण करने की पद्धति थी । क्योंकि इन परिवारों का वैवाहिक सम्बन्ध गार वादी के अपर भाग कोलोंग ठाकुर या गुम्रंग ठाकुर परिवार के साथ होता था । जिन की पारिवारिक बोली तोद्-पा (उप-तिब्बती) है । इस प्रकार तिननी बोली को तिब्बती शब्द दहेज के रूप में भी मिलता रहा है । निम्न उदाहरण से इस बोली की वास्तविकता का चित्रण उपस्थित हो जायेगा ।

हिन्दी	गारी	पटनी	तोद्-रंगलोई	तिननी
सिर	पुशा	पुंजा	गो	पुंजा-(प)
आंख	मिग	टीरा	मिग्	मिग्-(ग-तो)
घर	क्युम	चुङ	खंग्-पा	चुङ-(प)
सुन्दर	देई	सल्ठे	देमो	देमो-(तो)

सांकेतिक अक्षर-ग=गारी । प=पटनी । तो=तोद्-पा । ति=तिब्बती ।

धर्म	छोस्	छोक्ष	छोस	छोक्ष-(ति)
लाल	माई	शई	मरपो	शई-(प)
मूर्ति	कुण्डा	कुण्डा	कुण्डा	कुण्डा-(ति)
शीशा	अरशी	शीशा	शेल	शेल-(तो)
दवाई	मन	औषध	मन	मन-(ति)

यद्यपि यह बोली कई बोलियों का संमिश्रित रूप है परन्तु यह अपने आप में एक बड़ी सम्पन्न एवं सुमधुर बोली है । इस के बोलने का लहजा श्रोताओं को मुग्ध कर देता है । इस के बोलने वालों की संख्या भी बड़ी है । यों इस बोली का क्षेत्र थोरंग से लेकर सीसु तक समझा जाता है परन्तु यह सम्पूर्ण तिनन वादी में बोली या समझी जाती है चूंकि यह एक समिश्रित बोली है अतः गार और पटन वादी के लोग भी इसे आसानी से समझ सकते हैं ।

(4) यहां की उप-बोलियों में तोद्-रंगलोई बोली, अन्य पांचों बोलियों से मधुरतम बोली है । तोद् और रंगलो ये दो विभिन्न क्षेत्रों के नाम हैं । इन क्षेत्रों के निवासियों की बोली को तोद्-रंगलोई बोली कहते हैं, क्योंकि इन दो बोलियों में बड़ी समता है अतः ये एक ही बोली समझी जाती है । इसके बोलने वाले चार पांच हज़ार से अधिक लोग नहीं हैं । गार वादी के अपर भाग को तोद् (उत्तरी) और तिनन घाटी के ऊपरी इलाके को रंग्लो कहते हैं । यद्यपि इन दोनों क्षेत्रों की बोली, तिब्बती भाषा का एक उपरूप है परन्तु इन पर पड़ोसी बोलियों का प्रत्यक्ष प्रभाव है । इस प्रकार तोद् क्षेत्र की बोली में पड़ोसी जंस्कार और लद्दाखी बोलियों की प्रकृति निहित है तो रंग्लो की बोली स्पिति बोली से प्रभावित है । तो भी इन की संज्ञा, सर्वनाम तथा क्रियाओं का प्रयोग एवं वाक्य-रचना आदि व्याकरण के सभी नियम एक से होते हैं । अतः तोद्-पा और रंग्लोई बोली को एक ही वर्ग में रखा गया है । बाईबल की कतिपय कहानियों के अनुवाद को छोड़ कर लाहुल की किसी भी बोली में कोई साहित्य नहीं है । तोद्-रंगलोई बोली में कभी एक-आध पुस्तक छपी भी थी तो वह आज उपलब्ध नहीं है । तोद्-पा बोली लाहुल के ठाकुरों की पारिवारिक बोली भी है । इन ठाकुरों का लाहुल पर आज़ादी से पूर्व तक सामन्ती अधिकार रहा है । अतः लोग इस शाही बोली को आज भी आदर की दृष्टि से देखते हैं ।

(5.6) लाहुली उप-बोलियों में पांचवां और छठवां स्थान क्रमशः शिपी (डागी) तथा लोहारों की बोली का आता है । इन दोनों बोलियों में भी बहिन-भगिनी का रिश्ता है अतः इन दोनों को भी एक ही वर्ग में रखना अनुचित न होगा । यद्यपि लाहुल बौद्ध बाहुल्य प्रदेश है । बौद्धों में जाति-पाति की व्यवस्था नहीं होती परन्तु यहां काफी संख्या में चतुर्थ वर्ण के लोग विद्यमान हैं और ये लोग यहां के दलित वर्ग से हैं ।

डा0 ज0 अ0 ग्रियर्सन ने हिमालय शाखा की सभी बोलियों को एक ही लड़ी में पिरोने की कोशिश की है, परन्तु लाहुल के इन दलित वर्गों की बोलियों का अध्ययन करने से पता चलता है कि कम से कम यहां की शिपी और लुहारों की बोलियों को

तो भारतीय आर्य-भाषा की किसी शाखा में रखा जाना चाहिये था। इन बोलियों के अनुशीलन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वर्तमान में ये लोग भले ही लाहुल के अवर्णों में गिने जाते हों परन्तु कभी ये लोग आर्य परिवार के सदस्य थे। इन के शारीरिक गठन और मुखाकृति से भी ऊपरोक्त बातों की संपुष्टि हो जाती है। हो सकता है कि ये जातियां कभी किसी राज्य विपल्लव या प्राकृतिक आपदा के कारण मैदान से भाग कर लाहुल में आश्रय लेने आ गई हों तथा जीविका के तौर पर बढ़ईगिरी और लुहारी आदि दस्तकारी काम अपना लिये हों जो कालान्तर में इन का पेशा बन गया हो। इन दोनों की संस्कृतनिष्ठ बोलियां इस बात का प्रमाण उपस्थित करती ह कि ये किसी दलित-शोपित वर्ग की बोलियां नहीं है बरन् सवर्णों की बोलियां हैं। हिन्दी और संस्कृत के साथ इस का तुलनात्मक अध्ययन करने से सारी बातें स्पष्ट हो जाती हैं। देखिये इन के कुछ उदाहरण :—

हिन्दी	लुहारी	शिपी डागी	संस्कृत
1. यह आदमी है	-इ माऊ भो	-इ माऊ भो	-अयं मनुष्यः।
2. वह कुत्ता है	-से कुत्तु भो	-से खुई भो	-सः कुक्कुरः।
3. इसे करो	-इ करो	-इ कर	-एतत् कुरु।
4. इसे मत करो	-इ म करो	-इ मकर	-मा एतत् कुरु।
5. किधर जाते हो	-कोसोर गानु	-कोठें गस्थस्	-कुत्र गच्छसि?
6. उधर जा	-ओसोरी गा	-उठें गच्छ	-तत्र गच्छ।
7. यहां आओ	-इसोरी आई	-इठें आई	-अत्र आगच्छ।
8. क्या करते हो ?	-खि करना	-खि करतस्	-किम करोषि।
9. कुछ नहीं करता	-खि न करनु	-खि भी न करतस्	-किमऽपि न कुर्मः।
10. मैं सुबह जाऊंगा	-हऊं शुई गानु	-हहुँ विहागा गच्छ	-अहं प्रातः गमिष्यामि।

लाहुल का कुल क्षेत्रफल 1764 वर्ग मील है। इस प्रकार यहां की बोलियों का क्षेत्र भी बड़ा संकुचित होता है। गारी बोली का क्षेत्र आठ दस किलोमीटर के दायरे पर है तो तिनंनी का क्षेत्र दस-पन्द्रह किलोमीटर के लगभग है। इस प्रकार तोद्-पा और रंगलोई बोली का क्षेत्र भी दस बारह किलोमीटर के अन्तर्गत है। पटनी बोली का क्षेत्र इन सब बोलियों से विस्तृत है। यह तन्दी गांव से लेकर शली तक का सारा क्षेत्र अर्थात् पूरी पटन बैली इस के क्षेत्र में आती है। इस के अतिरिक्त यह बोली सम्पूण लाहुल में भी बोली जाती है। शिपी और लोहारोंकी बोलियों का अपना कोई क्षेत्र निश्चित नहीं है। लाहुल के प्रायः हर गांव में इन के दो एक परिवार निवास करते हैं,। बस यही इन की बोलियों का क्षेत्र समझा जाता है।

लगता है कि किसी ने लाहुल को दृष्टिगत रखते हुये निम्न पद की रचना की है—

कोस कोस पर बदले पानी,
पांच कोस पर बदले बाणी।

(पंजाब विश्वविद्यालय,
चण्डीगढ़।)

बघाटी के कृषि सम्बन्धी शब्दों का अध्ययन

—भीम दत्त काल

1. गावो—गाय स्त्रीलिङ्ग एक वचन बहु वचन में गावो, गाए।

2. बोल्द—बैल पुलिङ्ग एक वचन बहु वचन में समान रूप। अन्त में लगने वाली क्रिया ही बहुवचन की सूचक बनती है।

बोलद डोए—बैल गए।

बोलद डोओ—एक वचन।

बलीबर्द (संस्कृत) का परिवर्तित रूप। उपभाषागत, उच्चारण सम्बन्धी विशेषता 'बोल्द', इस प्रकार होगा। द में वर्तमान अ अनुच्चरित।

3. शान्ति करना—यौवन में बैलों को एक प्रकार की विशिष्ट क्रिया से नपुंसक (गर्भाधान अथवा प्रजनन शक्ति से रहित) कर दिया जाता है। यौवनयुक्त बैल कामुक होता है अत: अशान्त रहता है। इस क्रिया के पश्चात उसकी कामुकता नष्ट होने से उसकी शक्ति बढ़-जाती है और वह कृषि के अधिक उपयुक्त हो जाता है। वास्तव में पशु-जगत के साथ यह मानव का निर्ममता पूर्ण व्यवहार है।

4. बाछ्टु—गाय का छोटा बच्चा। इसका भिन्न उच्चारण 'बाश्टु' भी है। दोनों ही 'वत्स' के रूप है। बहुत अल्पायु के बछड़े को प्यार अथवा विशिष्ट स्नेह सूचित करने से इसका 'बाच्छ' रूप भी प्रयुक्त होता है।

5. बाछ्टि—बाछ्टु का स्त्रीलिङ्ग तथा बाश्टी-बाच्छी भी पूर्ववत प्रयोग में आता है।

6. शांड—जिसके बच्चा न हुआ हो ऐसी गाय, भैंस, बकरी आदि विशेषण, स्त्रीलिङ्ग, एकवचन, बहुवचन में 'शाण्डि' अन्तिम इकार का उच्चारण 'ई' तथा 'ए' की सव्यावस्था न तो 'ई' और न स्पर्श 'ए' ही। इसका प्रयोग सोलन क्षेत्र में केवल 'काकवंध्या (जिसकी कभी कोई बच्चा न हुआ हो) के लिए ही नहीं होता अपितु उसके लिए भी होता है जो किसी काल विशेष में भी वन्ध्या रहे। जैसे :–

'चऊ वर्षों दे गावो शांड अस्सो'।
चार वर्षों से गाय वांझ है।

tharahkardu.in

कभी कभी विशिष्ट अर्थ सूचित करने में भी इसका प्रयोग होता है एक लोकोक्ति 'घरे नि रांड आंबरे नि शांड', घर में नारी नहीं गोशाला में गाय आदि नहीं। इसका प्रयोग ऐसे व्यक्ति के विषय में किया जाता है जिसके पास घर-बार नारी-पशु कुछ भी नहीं है। यहां शांड का प्रयोग सामान्य पशु मात्र के अभिप्राय से किया गया है।

7. **म्हेश**--भैंस, महिषी का निकटवर्ती रूप कभी कभी विशेष अर्थ में भी प्रयोग होता है। यदि कोई मोटी ताजी नारी कार्य कुशल न होकर आलसी हो तो व्यंग्य रूप में प्रयोग होता है:-

ईओ देखो , म्हेश जि पसरिदी,
इसे देखो भैंस के सामान सोई है,-व्यंग्य उपहास ।

8. **झोट्टा**--भैंसा । इसका उच्चारण 'ज्होट्टा' होता है इसका प्रयोग मोटे ताजे व्यक्ति के लिए भी होता है एवं उपहास व्यंग्य में भी ।

ई ज्होट्टा कस्सि काम्मे आवणा?
यह भैंसा किस काम आएगा।

9. **झोटी**-युवती भैंस जिसके कोई बच्चा न हुआ हो किन्तु अनेक बार सू जाने पर भी कुछ समय तक इसका प्रयोग होता है।
झोट्टी सू गोई-झोट्टी सू गई।

10. **झोटड़ु**--भैंस का अल्पवयस्क बच्चा लगभग एक वर्ष की आयु तक प्रयोग होता है।

11. **भेड़**--भेड़-भेस का उच्चारण 'बहे' के सामान होता है इसमें 'भ' की विशुद्ध ध्वनि नहीं आती।

12. **खाड़ू**--भेड़ का पुल्लिङ्ग मेंढा किन्तु बाल्यावस्था का सूचक शब्द 'गावटु' है। यद्यपि 'गावटु' उभय लिङ्ग सूचक है तथापि अनेक बार स्त्रीलिङ्ग के लिए गांबटि का प्रयोग भी दिखता है जो स्त्रीलिङ्ग मात्र ही का सूचक है।

13. **बाकरा**--बाकरा, हिन्दी 'बकरा' से ही ग्रहण किया गया पुल्लिग एक वचन 'ब' को 'बा' उपभाषोचित उच्चारणार्थ ही किया गया है।

इस शब्द के दोनों लिङ्गों के रूपों का प्रयोग एक सामान्य सी गाली रूपक में भी किया जाता है।

मुआं चेंई बाकरा :--वह मरे तो अच्छा। किसी व्यक्ति के प्रति रोष व्यक्त करने के हेतु ही उसे 'बाकरा' कहा गया। यहां 'बाकरा' बकरा रूप मुख्यार्थ के सूचक के लिए

प्रयुक्त नहीं हुआ । इसी प्रकार जब वक्ता किसी स्त्री पर रुष्ट या अप्रसन्न है तो कहा जाता है ;

'सी बाकरी नि आई'
वह नहीं आई ।

14. छेलटु—बकरे का बच्चा (अल्पावस्था) प्रायः सभी प्राणियों के अल्पायु के बच्चे आकर्षक होते हैं। अतः इस शब्द की उत्पत्ति छेले-सुन्दर से मानना असंगत नहीं। इस उपभाषा में 'टु' का प्रयोग अल्पावस्था का सूचक है। जैसे कुतटु', गाबटु ।

15. बाकरी—बकरी स्त्रीलिङ्ग हिन्दी बकरी का अत्यल्प परिवर्तित रूप ।

16. गाबटु—भेड़ का बच्चा बाकरा। बाकरी की भांति इसका प्रयोग भी प्रेमपूर्ण उपालम्भ के लिए भी होता है। किन्तु स्त्रीलिङ्ग में ही ।
ई गाबटि नि मानदि, यह नहीं मानती ।

17. गुडाई—गोडाई करना इसका प्रयोग दो प्रकार से होता है। एक तो गोडने की क्रिया के अर्थ में जैसे :–
'कुकड़ि रि गडाई मुक्की गोई'।

—मक्कियों की गोडाई समाप्त हुई और दूसरे सामूहिक रूप में जब बहुत से व्यक्ति मिल कर किसी भी व्यक्ति की मक्कियां गोडते हैं तब भी इसका प्रयोग किया जाता हैं किन्तु यदि दो तीन ही व्यक्ति इस क्रिया को करें तो सामान्य रूप से 'गोडना' का ही प्रयोग होता है। 'गुडाई' शब्द का प्रयोग तभी किया जाता है जब बहुत से व्यक्तियों को बुलाकर एक विशिष्ट आयोजन किया जाता है। 'गडाए' में केवल गोडने वाले व्यक्ति ही नहीं अपितु ढोल, नगारा, शहनाई तथा करनाल वादक भी होते हैं जो अपने मध्य द्रुत तथा अति द्रुत समूह वादन से गोडने वालों में स्फूर्ति भरते हैं। इस विशिष्ट प्रकार की वादनक्रिया का नाम भी 'गडाए'है । इसमें द्वि तथा चतुर्मात्रिक ताल ही का विधान है ।

'गडाई बाज्जी राखि' इसका व्यवहारिक अर्थ है वादकों ने 'गडाई' में बजने वाला ताल बजाना आरम्भ किया है। यह क्रिया नितान्त मनोवैज्ञानिक है। ताल की लय में खोकर लोग अधिक काम तो करते हैं साथ ही नृत्याभिनय का आनन्द भी प्राप्त करते हैं। 'गडाई' के कार्यकर्त्ता बढ़िया भोजन से ही सम्मानित किए जाते हैं । यह सहयोग भावना का श्रेष्ठ निदर्शन है इसी प्रकार का शब्द खणाई है जब किसी नये स्थान को खोदने का आयोजन किया जाता है उसे खणाई कहते हैं।

18. नंदाई—निदाई, अन्न तथा सब्जी के पौधों में से व्यर्थ की घास आदि निकालना

19. सति–खेत का ऊपरी भाग जो पर्वत की ऊंचाई की ओर हो। समतल प्रदेश में सति तथा बिक्कर का अस्तित्व सम्भव नहीं।

20. बिचकर—खेत का निचला किनारा जो उतराई की ओर हो।

21. फाट—हल से जो गहरी रेखा खेत में बनाई जाती है। इस शब्द का जन्म फटने अथवा फाड़ने से मानना संगत है। वास्तव में फाड़ी गई भूमि का ही नाम 'फाट' है।

22. आंदरी—जब हल चलाते समय दो फाटों के बीच में थोड़ी सी भूमि बिना खोदी गई बच जाती है उसे 'आंदरी' कहते हैं।

हल-चालन में 'आंदरी' छोड़ना अकुशलता का सूचक है। इसकी उत्पत्ति 'अन्तर' शब्द से हुई है। दो फाटों के अन्तर की भूमि यह शब्द स्त्रीलिङ्ग होने के कारण अन्तर्भूमि के लिए सर्वथा उपयुक्त है।

23. ढेल—भूमि में हल चलाते अथवा खोद कर निकलने वाले ढेले। इसका वास्तविक उच्चारण है 'डहेल' है।

24. खेच—खेत पु० क्षेत्र का ही निकटवर्ती रूप।

25. खिलणा—खोदने का छोटा साधन, खनिज, जिसमें लकड़ी का कुछ लम्बा बेंटा लगता है।

26. राम्बा—खिलणे का बड़ा रूप जिसका उपयोग 'गडाई' में होकर भूमि आदि खोदने में किया जाता है। यदि इसमें वर्ण प्रत्यय की प्रक्रिया से यह माना जाय तो 'राम्बा' में 'रा' 'ला' के स्थान पर आया है, इसका सम्बन्ध 'खिलणे' से मेल खाता है। अर्थात् लम्बे आकार का 'खनिज'।

27. हल.—हल इसका वास्तविक उच्चारण 'ओडल्' जैसा है।

28. जूंगड़ा.—जुआं हल्के काठ से बना लम्बे आकार का साधन जो दोनों बैलों के कन्धों पर रख कर गले में रस्सियों से बांधा जाता है और जिसके मध्य भाग में हल की लाट एक मोटे रस्से से बांधी जाती है।

29. हलश—हल की लम्बी लाट जो हल के चौड़े भाग पर जुड़ी होती है और जिसका पिछला भाग जो हल के साथ जुड़ा होता है, चौड़ा तथा जुंगड़े के साथ बांधा जाने वाला क्रमशः पतला होता जाता है। इसे बान तथा मौरु की पक्की लकड़ी से बनाया जाता है।

30. भाल्लड़—एक मोटा रस्सा जो हलश तथा जूंगड़े को बांधने के उपयोग में आता है। यह भाबेल् नामक वृक्ष के रेशों से बनता है जिन को 'शेल' कहा जाता है।

31. **छटेरी**--बांस की पतली पट्टियों से बनी छोटी छोटी टोकरियां जिन्हें बैलों के मुख पर इस कारण बांधा जाता है कि वे जब हल के लिए ले जाए जाते हैं तो खेतों में लगी फसल के पौधों को न चर सकें। छटेरी किसी प्रकार की डोरी से बुनकर भी बनाई जाती है।

32. **फाला**--लोहे की लगभग डेढ़ फुट लम्बी डेढ़ दो अंगुल चौड़ी आधा अंगुल मोटी पत्ती आगे से पैनी होती है जिसे बान की लकड़ी से बने हल के अगले तथा ऊपरी भाग में लगाया जाता है इसे फाले के द्वारा ही हल भूमि में घुस कर उसे खोद अथवा फाड़ सकता है।

बिना फाले का हल ठीक वैसा ही है जैसा बिना लोहे के भाग के चाकू।

33. **पैंड़ी**--अन्न अथवा अन्य किसी भी पौष्टिक पशु खाद के अण्डाकार गोले जो पशुओं को खिलाए जाते हैं। जिन दिनों बैलों से हल चलवाया जाता है उन दिनों लगभग दो बार पैडियां खिलाई जाती हैं।

34. **फरुआ**--फावड़ा, मिट्टी को खींचने का साधन।

35. **दाच**--द्राट, जिस से सामान्य कोटि की मोटी लकड़ियां तथा झाड़ झंकार आदि काटे जाते हैं साथ ही जो वृक्षों से पत्तियां काटने के उपयोग में भी लाया जाता है। द्राटी का वड़ा रूप।

36. **दाचिड़**--द्राटी, दात्री शब्द से बना है, घास काटने का एकमात्र साधन, छोटा हल्का। स्त्रीलिङ्ग। बवाठी, महासुई, सिरमौरी क्योंथली में समान रूप से व्यवहृत।

37. **कराहड़ी**--कुल्हाड़ी, स्त्रीलिङ्ग कुल्होड़ा, उच्चारण सौष्ठव ने कुल्हाड़ी को कराहड़ी बना दिया है। सभी रूप से संस्कृत शब्द कुठार के निकट है।

38. **छिनणा**--कृषि-क्रिया में अनेक वृक्षों के पत्ते उपयोग में आते हैं। उनके दो मुख्य प्रयोजन हैं-पत्तियों को पशु आवास में बिछा कर उसे सूखा तथा गर्म रखा जाता है इन्हीं से गोबर या खाद बनती है दूसरी ओर घास की न्यूनता में ये पशुभोज्य के रूप में काम में आते हैं। वृक्ष पर चढ़ कर इन पत्तियों को छोटी टहनियों सहित काटा जाता है, इसी क्रिया का नाम छिनणा, जिस वृक्ष की पत्तियां काटनी हों उसी का प्रयोग 'छिनणा' के पूर्व किया जाता है। जैसे वान:छिनणा, भविल-छिनणा।

39. **ओलना**--इसका अर्थ भी काटना है किन्तु इसका प्रयोग छिनणा के स्थान पर कभी भी नहीं होता। इसका प्रयोग घास, गेंहू, धान आदि सूक्ष्म वस्तुओं के सामूहिक रूप में काटने के अभिप्राय से ही होता है। जैसे:--

घा ओलना, घास काटना है।
धान ओले-धान काटे, गेंहू ओले-गेंहू काटे।

tharahkardu.in

40. **लुणना**--यह सर्वथा 'ओलना' का ही पर्यायवाची है और इसमें लून्, छेदने का रूप सर्वथा स्पष्ट है

41. **पुणना**--किसी भी प्रकार के अन्न में जो भूसा अथवा अनुपयोगी भाग होता है उसे वायु की सहायता से पृथक करना जब गेंहू जौ, चना, मसूर, मूंग, सरसों आदि अन्न बैल घुमाकर घास से अलग हो जाते हैं तब उन्हें पुणा जाता है । सूप आदि में वह दानों मिली भूसी भरकर ऊंचे से गिराई जाती है । वायु भूसे को दूर उड़ा देती है किन्तु दाने सीधे नीचे गिर कर ढेर बन जाते हैं । इसके लिए किसी भी ओर को बहने वाली वायु की प्रतीक्षा करनी ही होती है ।

42. **गाह्णा**--गेहूं, जौ, दालों, सरसों आदि सूक्ष्म अन्नों को घास से पृथक करने के लिए खलिहान में डालते हैं । उन पर बैल चलाए जाते हैं इस प्रकार वे अपनी बालों अथवा फलियों से पृथक हो जाते हैं । इसी क्रिया को 'गाह्णा' कहते हैं । संस्कृत का गाह् धातु गत्यार्थक है उसी से इस 'गाह्णा' की उत्पत्ति सार्थक जान पड़ती है । गाह्णे में बैलों को चलना पड़ता है । इस प्रकार क्रिया का मूलार्थ इस शब्द में है ।

43. **झाड़ना**--मक्कियों के दाने गुल्लों से अलग करना । मक्कियों के गुल्ले जब दानों सहित सूख जाते हैं तब इन्हें किसी कमरे में डाल कर इन पर डण्डों से प्रहार करते हैं इस प्रकार दाने गुल्लों से पृथक हो जाते हैं । इसे ही झाड़ना कहते हैं । यद्यपि 'गाह्णा' तथा 'झाड़ना' का परिणाम समान है तथापि एक के स्थान पर दूसरी क्रिया का प्रयोग नहीं होता ।

44. **रुम्मणा**--किसी स्थान पर जमाई गई धान की पौध को उखाड़ कर जब क्यारियों में एक-एक पौधे को अलग करके गाड़ा जाता है यह-है रुम्मणा । जो रोपण से बना है गढ़वाली उप-भाषा में तो इसे रोपणी ही कहते हैं ।

45. **क्यार**--वे खेत जिन में पानी डाल कर मिट्टी का पतला घोल बना कर धान की पौध रोपी जाती है । 'केदार' का निकटवर्ती, सार्थक पुल्लिङ्ग ।

46. **क्यार लाणे**--पानी वाले धानों की खेती की पूर्ण क्रिया ।

47. **सिंजणा**--पानी देना सिंचन का अति निकटवर्ती रूप ।

48. **कूल लाणी**-सिंजणा का ही दूसरा रूप ।

49. **शुक्षा**--कभी-कभी अनेक प्रकार की सब्जियों को काट कर सुखा लेते हैं इन्हें कभी भी उपयोग में लाया जा सकता है। इसे शुक्षा कहते हैं यह शब्द वर्णप्रत्यय से शुष्क से बना है-जिसका अर्थ है सूखी वस्तु । पुल्लिङ्ग । फलों का सुखा रूप भी इसी नाम से कहा जाता है ।

50. **पिड़ना**—तेल वाले अन्न, सरसों, तिल आदि को कोल्हू में डाल कर तेल निकालना, तेल निकालने में तेल-पदार्थ को दबाया जाता है तभी तेल निकलना सम्भव है । अतः इस की उत्पत्ति 'पीड' धातु से मानना समुचित है ।

51. **मोई**—लकड़ी का दो या डेढ़ गज़ लम्बा, चार इंच मोटा और लगभग छः इंच चौड़ा सलीपर जिसे से हल चले खेत को समतल किया जाता है ।

52. **ढेल लाणे**—हल चलाने पर भूमि में से जो छोटे बड़े ढेले निकलते हैं उन्हें तोड़ना ।

53. **बिजणा**—बीज बोना ।

54. **बारा**—बारी लेना । ग्रामों में अनेक कार्य बारी-बारी से किए जाते हैं जैसे खेतों की सिंचाई एवं गांव भर के पशुओं का सम्मिलित रूप में चराना आदि । ग्रामीण नहरों (कूलों) के जल का वितरण बारी-बारी से होता है जिस दिन जिसे पानी मिलता है उस दिन उसी का कूल का बारा हुआ । किन्तु अन्य कई छोटी मोटी क्रियाओं में 'बारा' का प्रयोग नहीं 'बारी' का ही प्रयोग होता है ।

55. **हेल्ला**—सहयोग पूर्वक जब एक कार्य को (जिसमें कोई वस्तु उठाकर लानी हो) करते हैं तो इसे हेल्ला कहते हैं । लकड़ी, पत्थर, लोहा, टिन आदि उठाकर लाने की क्रिया के लिए इसका प्रयोग किया जाता है । हेल्ला सहयोग-भावना का सुन्दर निदर्शन है । हेल्ला-स्वामी भाग लेने वालों को किसी भी प्रकार का पारिश्रमिक न देकर उन्हें सुन्दर भोजन से सम्मानित करता है । इस शब्द का आगमन संस्कृत 'हेला' से हुआ है जिसका अर्थ सहसा, एक साथ है । इसका उच्चारण 'एह्ल्ला' इस रूप में होता है ।

56. **दो-चि**—अनेक भूस्वामियों के पास दो-दो स्थानों पर कृषि योग्य भूमि होती है। जिस भूमि पर भूस्वामी का अस्थायी निवास होता है उसे 'दो-चि', कहते हैं । भूस्वामी का अस्थायी आवास ही दोची है । मुख्य तथा स्थायी आवास तथा स्थान के लिए इस शब्द का कभी भी प्रयोग नहीं होता इस की उत्पत्ति संस्कृत के 'द्वि-उष्टि' 'द्वितीया उष्टि :' (दूसरा आवास) से माना जा सकता है ।

57. **हलोट**—मक्की बो देने पर जब कभी कभी अखण्ड वर्षा आरम्भ हो जाती है तो मक्की की अपेक्षा व्यर्थ का घास-पात बढ़कर उस की वृद्धि को रोक देता है । इस नष्ट करने के ही अभिप्राय से खेतों में हल चलाया जाता है । इस प्रकार यह व्यर्थ की घास उखड़ कर सूख जाती है । 'हलोट' गहरा नहीं दिया जाता । कारण इसका प्रयोजन तो केवल शाणा (बरसाती घास) उखाड़ना मात्र है । हलोट के पश्चात् ही गडाई, की जाती है। इसका उच्चारण 'अह्लोट' इस प्रकार है।

59. **गाह्ण**—जिस अभिप्राय से हलोट दिया जाता है सर्वथा गाह्ण का भी वही प्रयोजन है । डेढ़ गज़ लम्बी लकड़ी जो चार इंच के लगभग मोटी तथा कुछ धनुषाकार सी

होती है, उसी में लकड़ी के पैने दन्दे जो हाथ भर लम्बे होते हैं, लगाए जाते हैं। इसे हल की भांति चला कर घास उखाड़ी जाती है, इस प्रकार 'गोड़ाई' आसान हो जाती है। 'गाहृण' और हलोट दोनों ही क्रियाएं गोड़ाई से पूर्व की जाती है। इसके लिये पारिभाषिक उक्ति है–'गाहृण देणा'।

59. **जगाली**––इसका कृषि में बहुत ही महत्व है। अधिकांश गांव ऐसे हैं जिन के आस पास बड़े बड़े ढांग अथवा वन होते हैं। इनमें बन्दर, लंगूर आदि निवास करते हैं। ये बरसाती खेती के घोर शत्रु हैं। कच्ची खेती पर ही इनकी सेनाएं आक्रमण कर देती हैं इसी लिए खेती की रक्षा के लिए खेतों के कई ओर अस्थायी झोंपड़ियां बनाई जाती हैं जिनमें बैठ कर इन हानिकारक प्राणियों को भगाया जाता है, कुत्ते भी बिठाए या रखे जाते हैं। रक्षा करने वाला व्यक्ति जगाली में बैठ कर ही वर्षा से बचाव करता है इसका एक अन्य नाम 'छान' भी है किन्तु 'छान' का प्रयोग किसी भी घास पत्तों से छाई झोंपड़ी के लिए भी किया जाता है। किन्तु 'जगाली' एक ही अर्थ का सूचक है। 'जागणा' क्रिया रक्षा के लिए आती है उसी से जगाली बना है–रक्षार्थ निर्मित स्थान।

60. **छिरबण**—इसका भी खेती में बड़ा महत्व है। इसे संस्कृत में प्रक्षेपणी कहते हैं, अर्थात्–दूर तक फैंकने का साधन। इसे पतली तथा पक्की रस्सी से बनाया जाता है। बीचों बीच लगभग एक बालिश्त लम्बी तथा तीन अंगुल जाली होती है। उस जाली में दोनों ओर को लगभग एक गज़ लम्बी रस्सी होती है उसके एक ओर तंग कड़ी होती है जिसे तर्जनी में फंसाया जाता है और दूसरे छोर को उसी हाथ से पकड़ कर जाली पर पत्थर रखकर उसे घुमाया जाता है। उसमें खूब वेग आने पर 'छिरबण' का खुला भाग सहसा छोड़ा जाता है। इस प्रकार पत्थर को बहुत दूर तक फैंका जाता है। इससे खेती के शत्रु प्राणी डराए तथा भगाए जाते हैं। 'छिरबण' गुलेल का काम करता है। किन्तु छिरबण की प्रक्षेपण सामर्थ्य बहुत अधिक है।

61. **वणे जाणा**––यह एक अद्भुत शब्द है। यह शब्द कैसे बना, इसका पता चलाना कठिन है। जब गाय को बैल के सहवास की इच्छा होती है उस समय कहा जाता है ई बाच्छी 'वणे जाणि लागि दी' भाव इस बछिया को सांड या बैल के सम्पर्क की इच्छा है। यह अभिधार्थ इस शब्द से मुख्यार्थ के रूप में कथमपि व्यक्त नहीं होता। सहवास जैसी क्रिया को स्पष्ट रूप से बताना अशिष्टता है। अतः यह शब्द शिष्टता की रक्षा के लिए बनाया गया जान पड़ता है। इस शब्द में से एक गोपनीय ध्वन्यर्थ सूचित होता है। सहवास जैसी क्रिया वन में अर्थात एकान्त में ही उचित है। इस प्रकार 'वणेजाणा' का शब्दार्थ हुआ 'वन में जाना' और ध्वन्यर्थ हुआ–एकान्त में करणीय क्रिया।

(—काले कला मन्दिर,
मिडल बाजार,
शिमला।)

ग्रियर्सन का पहाड़ी भाषा सम्बन्धी निष्कर्ष: एक विवेचन

–डा0 बंशी राम शर्मा

भाषा सांस्कृतिक इतिहास के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए सशक्ततम माध्यम है। किसी समाज में प्रचलित बोली अथवा भाषा का प्रभाव सांस्कृतिक दृष्टि से किसी भी प्रकार निष्क्रिय नहीं किया जा सकता। भाषा का अध्ययन इतिहास-सम्बन्धी अध्ययन के लिए भी अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जा सकता है परन्तु दुर्भाग्य है कि इतिहासकारों ने इस तथ्य को ध्यान में नहीं रखा और इतिहास-अध्ययन को मात्र व्यक्ति-निष्ठ बना दिया। डा0 ग्रियर्सन को भारत की भाषाओं का सर्वेक्षण करने का श्रेय प्राप्त है। विभिन्न संस्कृतियों के इस विशाल देश में कौन जाति व धर्म कब प्रकाश में आया, इस सम्बन्ध में सर्व-सम्मत निष्कर्ष निकालना सम्भव नहीं है परन्तु लोक-संस्कृति व भाषा के अध्ययन इस दिशा में महत्वपूर्ण आधार-स्तम्भ हैं।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, डा0 ग्रियर्सन ने भारतीय भाषाओं का सर्वेक्षण करके महत्वपूर्ण कार्य किया है परन्तु जैसा स्वाभाविक है इस प्रकार के आरम्भिक अध्ययनों में निष्कर्ष सम्बन्धी भूलों का हो जाना आश्चर्यजनक नहीं है। डा0 ग्रियर्सन ने अपने वृहद् ग्रन्थ 'लिंग्विस्टिक सर्वे आफ् इण्डिया' के नवें भाग के चतुर्थ खण्ड में भारतीय आर्य भाषा परिवार के केन्द्रीय समूह के अन्तर्गत 'पहाड़ी भाषाओं तथा गुजरी' का सर्वेक्षण प्रस्तुत किया है। इस खण्ड के प्रथम पृष्ठ पर 'पहाड़ी' शब्द को पर्वतों से सम्बन्धित मानते हुए वे हिमालय की निचली पर्वतमालाओं में पूर्व में नैपाल से लेकर भद्रवाह तक फैले क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषाओं को 'पहाड़ी समूह' के अन्तर्गत रखते हैं। उन्होंने पहाड़ी भाषा को तीन मुख्य उपवर्गों में विभक्त किया है—1. पूर्वी पहाड़ी, 2. मध्य पहाड़ी तथा 3. पश्चिमी पहाड़ी। पूर्वी पहाड़ी-भाषी क्षेत्र में नेपाली की प्रधानता है इसे खसकूरा, गोरखाली अथवा 'खसकुश' भी कहा जाता है। उनके अनुसार नेपाल खश–क्षेत्र है अत: ऊपरोक्त नाम सार्थक है। गढ़वाली तथा कुमाऊंनी के क्षेत्र को 'मध्य पहाड़ी' क्षेत्र कहा गया है। पश्चिमी पहाड़ी जौनसार-बावर से लेकर जम्मू-काश्मीर के भद्रवाह क्षेत्र तक बोली जाती है। प्रस्तुत लेख में हमारा सम्बन्ध पहाड़ी भाषा के इस समूह से अधिक है। डा0 ग्रियर्सन ने अपने सर्वेक्षण में इस भाषा के बोलने वालों की संख्या मात्रा 816,181 दी है। उनका यह विवरण 1891 ई0 की जनगणना पर आधारित है। आंकड़ों को देखने पर पता चलता है कि यह संख्या ठीक नहीं है। अस्तु, वे पहाड़ी के सम्बन्ध में लिखते हैं कि इसका सम्बन्ध यद्यपि पंजाबी, पूर्वी तथा पश्चिमी हिन्दी और बिहारी जो इसके ठीक दक्षिण में बोली जाती हैं, से नहीं है परन्तु यह उल्लेखनीय है कि इसका

राजस्थानी से घनिष्ट सम्बन्ध है ।[1] वे संस्कृत में वर्णित खशों व गुर्जरों का इतिहास इस सम्बन्ध में उद्धृत करते हुए कहते हैं कि कनैतों व खशों का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है तथा वर्तमान 'राव' जाति गुर्जरों से सम्बन्धित है । उनका मत है कि छठी शताब्दी के बाद गुर्जर तथा अन्य विदेशी जातियां जो राज्यस्थान में बसीं, ने राजस्थानी भाषा को द्रुतगति से अपनाया तथा उनके साथ आई हुई स्त्रियों ने हिन्दु स्त्रियों के सम्पर्क में आकर धर्म, रीति-रिवाजों तथा भाषा को सीखा । गुर्जरों के शासन के समय में इस भाषा का प्रचार-प्रसार क्षेत्र बढ़ गया और मुसलमानों के आक्रमणों के समय जो लोग राजस्थान से अपने बन्धु-बान्धवों के यहां शिवालिक तथा हिमालयी क्षेत्रों में आए, वे अपने साथ अपना धर्म, संस्कृति तथा भाषा भी लाए और राजस्थान और शिवालिक प्रदेश के ये सम्बन्ध पर्याप्त समय तक अविच्छिन्न रहे। उल्लेखनीय है कि ग्रियर्सन ने डोगरी को पंजाबी के अन्तर्गत स्थापित किया है परन्तु पहाड़ी को वे पंजाबी से अलग मानते हैं । पश्चिमी पहाड़ी (वर्तमान हिमाचल क्षेत्र की भाषा) के अन्तर्गत वे जौनसारी, सिरमौरी, बघाटी, क्योंथली, सतलुज समूह, कुल्लूई, चम्बयाली तथा भद्रवाही को रखते हैं । इसका अर्थ यह हुआ कि उन्होंने न तो प्रत्येक क्षेत्र का भाषा-सम्बन्धी नमूना प्राप्त किया और न ही तथ्यों के आधार पर उसका अध्ययन प्रस्तुत किया जा सका । मण्डी, बिलासपुर तथा कांगड़ा की बोलियों में उच्चारण तथा व्याकरण सम्बन्धी इतना कम अन्तर है कि जहां इनकी शब्द-सम्पदा एक ही प्रकार की है वहां लोगों का रहन-सहन तथा बात-चीत का माध्यम भी एक सा ही है। पश्चिमी पहाड़ी की विभिन्न बोलियों में 'स्वराघात' के अन्तर दृष्टि से ओझल नहीं किए जा सकते, परन्तु क्या भाषा का वर्ग निर्धारित करने में 'स्वराघात' का ही मुख्य हाथ है ? निश्चित है कि बोली अथवा भाषा की बनावट, व्याकरण का पूरा ढांचा, शब्द-भण्डार, वाक्य-विन्यास तथा ध्वनियां मिल कर भाषा का परिवार निर्धारित करते हैं । पश्चिमी पहाड़ी में डा० ग्रियर्सन ने अनेक विशेषताओं, यथा 'अ' का 'ओ', 'इ' का 'ए', इ तथा ए का उच्चारण-साम्य और 'च़' तथा 'ज़' ध्वनियों का होना आदि का संकेत दिया है परन्तु वे साधनों के अभाव में सम्यक अध्ययन प्रस्तुत नहीं कर पाए हैं । पहाड़ी भाषा की केवल यही विशेषताएं नहीं हैं बल्कि अपनी 'ठेठ शब्दावली', च़ वर्ग, ल़ की विद्यमानता, किन्हीं प्राचीन भाषाओं के शब्दों का प्रचलित होना तथा समृद्ध शब्द-भण्डार आदि बातें भी द्रष्टव्य हैं । इन तथ्यों के आधार पर एक नए भाषा-सर्वेक्षण के द्वारा पहाड़ी भाषाओं का स्वतन्त्र वर्ग-निर्धारण करने की आवश्यकता से इन्कार नहीं किया जा सकता ।

---

1. It is remarkable fact that although Pahari has little connection with the Panjabi, Western and Eastern Hindi, and Bihari spoken immediately to its South, it shows manifold traces of intimate relationship with the languages of Rajputana.

—Linguistic Survey of India,
Vol. IX, part IV, page 2.

कृषिपरक मण्डयाली शब्दावली

—डा० कांशीराम

लोहालु: लोहे का तीव्र और पैना औज़ार जो भूमि को फाड़ता है ।

फाल: लोहालु का ही अन्य नाम प्रचलित है । इसे हिन्दी में सता भी कहा गया है ।

हलाड़ी, ल्हाड़ी: हत्थी अथवा हथेली जिसके सहारे हल साधा जाता है ।

फल्युड़ी: लोहालु के ऊपर की लकड़ी की गांठ जिससे कि फाल को लोहे के एक कुण्डे के द्वारा दृढ़ करते हैं ।

कुन्दा या कुडंज: जिस में दोहरी कुण्डीदार कील द्वारा लोहालु और फल्यूड़ी फंसाई जाती है ।

ओग: हल के मध्य हरिस को दृढ़ता से गडाने के लिये पीछे लगाया जाता है लकड़ी का मोटा और लगभग छः इंच लम्बा चूल में ठोका जाने के लिये औज़ार ।

जूड़ा-जूंगड़ा: जुआ जिसमें बैलों को जोता जाता है ।

सैंहलें: जुए के आगे चार लकड़ी की बनी हुई बारह इंच के लगभग होती हैं । इनके द्वारा रस्सियां लगा कर बैलों को जोता जाता है और इससे जुआ लगाने में सुविधा रहती है ।

नेत्र: रस्सी के छोटे छोटे बन्धन जो सैंहलों के साथ जोते जाकर बन्धे रहते हैं ।

जयरानी: जुए को हल के साथ बान्धने के लिये प्रयोग की जाती है । यह पांच फुट से दस फुट तक की साधारण मोटाई की रस्सी होती है ।

हलस: हल के साथ बैलों के आकार के आधार पर लम्बाई की बनाई जाती है । हल के केन्द्र भाग में गड़ी रहती है । ओग दृढ़ता पूर्वक इसे हल के साथ जमाए रखता है ।

फरादा: (औहटा) मिट्टी के ढेले तोड़ने के लिए लकड़ी के डण्ठल के साथ छः इंच से दस इंच तक का एक औज़ार ।

परैंठ या परैण: बैलों को खेदने के लिये बांस की तीव्र सोठी ।

म्याड़ा या मई : मिट्टी को बिछाने और ढेलों को तोड़ कर फाल से खोदी गई मिट्टी को समतल करने का औज़ार ।

म्यासो : मई या म्याड़ा में दो लम्बे बांस के छड़ जो बैन्तों के आकार के होते हैं ।

किलणी (कुदवाली) खिलणू : कुदाली जो मिट्टी को उखाड़ने और निलाई करने के काम लाई जाती है ।

कदवाल (खिलणा) : खुंट : कुदाल के विविध प्रकार ।

जाभ, फड़वा : फड़वा जो मिट्टी धकेलने के काम आता है ।

जाड़ा जाड़ी : जो कि लकड़ी का कुदाल और कुदाली के लोहे को पकड़ने के लिये होता है ।

पंञ्जराली : जुए की एक दृढ़ प्रकार जिससे बैल अधिक भागते कूदते नहीं हैं ।

फीहड़ : हलीस का भाग जो हल के साथ सटा रहता है ।

दाची : दाचड़-दरान्ती ।

छहू : कुल्हाड़ा ।

छुब छुब्बी : घास बान्धने की घास की रस्सी।

रेटा, रेटकू, गड्डी : घास का काट कर बोझा या भार ।

ढागा धण : पशु इत्यादि ।

नाणा अथवा रौण : ढागा धण ।

खेच : खेत, क्षेत्र ।

शवाड़ : घर के आस पास के छोटे खेतों को।

खल खेहल : खलिहान जहां अन्न एकत्र किया जाता है ।

कियार : जहां धान आदि की रोपनी की जाती है ।

रोपा : खेतों की तलहटी अथवा समतल भूमि ।

डोहरी—डोहरू : खेत; क्षेत्र ।

भींड : दीवार, मेंड़ ।

निगर : भरपूर,

पलहैंओ : खेती का पोलापन ।

गरका : भारी ।

अणचक बोझ : अत्यधिक बोझ ।

बिउ: बीज ।

अल्ली : जिस में बीज नहीं बोया जा सके ।

सीन-सीऊं : पानी, नमी जिसमें बीज उग सके ।

क्रियाएं

बाहणी : बीजना, खेतों में हल चलाना ।

बौणी : बीजना का ही विकृत रूप ।

छल देणा : हल की दंदादटी के साथ संवारना ।

चिणनी : चिनाई करना और तरतीब में ऊपर तक ले जाना।

जोड़ना : एकत्र करना संयुक्त करना । खेतों में बैलों सहित हल चलाना ।

ढालणा : गिरा देना, अनाज अथवा घास के ढेर को विखरा देना, पत्थरों की चिनाई को गिरा देना ।

ढलणा : किसी वस्तु यथा घास अन्न के ढेर का गिरना ।

गरना : फफून्द अन्न अथवा घास में लगना ।

चंगेरना : घनी फसल को हल अथवा स्वयं उखाड़ कर पतला करना ।

कठेरना : घास अथवा फसलों को इकट्ठा करना ।

मिल्णा : हल और बैलों को जुते होने के बाद छोड़ना ।

संगेलणा : एकत्र करना एक स्थान पर ढेर लगाना ।

नड़ेरना : निकट लाना, इकट्ठा करना, समीप रखना ।

हलोड़णा : खेती में खर पतवार के लिये हल्का दूर दूर हल चलाना ।

निद्णा : नलाई करना ।

खण्डेरना : विखरा देना, अन्न घास या दानों का विखराना ।

खिण्डणा : विखरा देना ।

दलणा : उंडेल देना ।

डौण्डु फुलणा : खर पतवार की भरमार होना ।

नसेरना : नई फसल का निवाला ग्रहण करना ।

पुणना : पुनाई, पवन में दानों और भूसे को पृथक करना ।

हांगणा : दानों को एक छालनी में से गुजार कर पृथक करना ।

फड़ाकणा : भूसे को अन्न से पृथक करना ।

सोरना, माण्डना : गाहना, फसल के दानों को फसल से पृथक करने के लिये पशुओं द्वारा मण्डाना ।

पटणी : उखाड़ डालनी ।

विश्लेषणात्मक

परवाणी गल्ल: पुरानी बात (ध्वनि लाघव से पुरानी से परवाणी)

राजे रे: राजा के (रे, रा, री) सम्बन्ध कारक ।

कने: और, साथ अथवा पश्चात् के बाद पर सप्तम् कारक चिन्ह ।

भई: कि (संयोजक) ।

ब्याणे: ब्याहना विवाह कराना ।

मंझ: भीतर, में (सप्तम् कारक) में वाचक ।

मट्ठे: लड़के-लघु सूचक।

बरी-डोरी: कुड़माई बरासूही संस्कार करना ।

कठें: तई, के लिये चतुर्थी (सम्प्रदान) कारक ।

सादे: 'सादणा,' का भूत काल सादे—(बुलाए) ।

खाधी: खाणा क्रिया का भूतकालिक रूप—खाई ।

सासण-भाटी: जागीर और यज्ञ आदि जो भाट पुरोहितों को खिलाते हैं ।

रवारी: वर की अथवा वधु की खोज ।

हुण: अब, अभी ।

धीवां: धीएं-पुत्रियां ।

कहारी-बगारी: सेवक नौकर चाकर आदि ।

टीप-टीपड़े: जन्म पत्रिकाएं ।

गणी-गट्ठी: जांच हाड़ कर, शोध विचार करके।

साख बन्ध बणना: शांख बन्ध, एक वंश की शाखा से दूसरे का गोत और सम्बन्ध जुड़ना सम्बन्धी बनना ।

हाऊं: अहं, हौं, मैं का रूप मैं अर्थ में सर्वनाम ।

चोरटु: चोरादि, (लाघव Diminitue)-प्रयोग बाहुल्य पूर्ण बोली ।

करणकार: संयोग वश घटना घटना (होना) ।

तित्थी: तित, तत्र (वहीं) अपभ्रंश प्रचलन ।

मकलावा: मख दृष्टि पात, सुतरात्र-सौहाग रात तथा अगौना मधुमास आदि के रूप में।

मिजो: मुझे, मुझ को, मेरे लिये सम्प्रदान कारक । लेई लई: ग्रहण करली।

भाउ: भाई का लघु रूप । पुज्जी गए: पहुंचे । पुज्जणा: भूत0 पुज्जे ।

बेहड़ेआ: राज प्रासाद, महलों में । सौगी-सौगी: साथ साथ ।

निहाल: प्रतीक्षा, निहालना (क्रि0) ।

हाथा-पात्र: खाली, निराश ।

हूघा: होगा ।

लिश्रांघा : लायेगा ।

पीढ़ेश्रा : सवारी की ।

पित्तेश्रा : पीश्रा-पीणा, पीहंगा, पित्तेश्रा (कालानुसार परिवर्तन) ।

पलाय पुरी : पाताल पुरी ।

ढफेली करी : सहारे लिये हुये ।

चक्की : उठाई ।

कढी दित्ती : निकाल दी ।

दबाणे (जिकणे) दबाना, दबाता ।

हिल्लण हूणा : भूकम्प होना ।

रूढ़ी जाणे : बह जायेंगे ।

बणाई कने : बना कर ।

बन्ही देणा : बान्ध दूंगा ।

लाज दस : इलाज बताश्रो । इलाज का लाज, दसणा-बताना ।

तिज्जो : तुझे भी ।

डाला कने : वृक्ष के साथ ।

बान्ही : बान्ध कर ।

खिसकी : टल कर, बचकर निकलना ।

बसदे होये : निवासी बन गए ।

[टिहरा, मण्डी, हि0 प्र0]

पहाड़ी (महासुवी) की शब्द सम्पत्ति

—हरि राम जसटा

निःसन्देह, 'शब्द' मानव समाज द्वारा प्रयोग में लाया जाने वाला सर्वोत्तम रसायन है। ऐसा हैम्पटेन के अनुसार ईश्वर ने नक्षत्रों, मेघमालाओं और पक्षियों द्वारा सौन्दर्य का पूरा अपूर्व ताना बाना तान लिया है, किन्तु शब्दों के समान सुन्दर कोई वस्तु नहीं बनाई। ऐसे ही सुन्दर शब्दों का निर्माण मानव जाति के विकास में प्रकाश स्तम्भ का कार्य करते हैं।

सबसे पहले प्रत्यय के बारे में जिक्र होगा।

प्रत्यय दो शब्दों से बना है। प्रति और अय। प्रति का अर्थ होता है—साथ में, पर, बाद में। अय का अर्थ होता है चलने वाला। इस प्रकार प्रत्यय का अर्थ है शब्दों के साथ पर बाद में चलने वाला (या लगने वाला) शब्दांश। इसलिए प्रत्यय किसी शब्द के अन्त में लगता है और शब्दों का निर्माण करता है। प्रत्यय के दो भेद होते हैं—1 कृदन्त और 2 तद्धित।

(1) कृदन्त—धातु या क्रिया के अन्त में जो प्रत्यय लगते हैं वे कृत प्रत्यय कहलाते हैं तथा कृत प्रत्यय से बने शब्द कृदन्त कहे जाते हैं, जैसे—

नींदना—निदाई	चढ़ना—चढ़ाई	घड़ना—घड़ाई
भरना—भराई	लड़ना—लड़ाई	पीसना—पिसाई
लौणा—लणाई	मारना—मार	झड़ना—झड़ाई
काटना—कटाई	पीटना—पिटाई	पकड़ना—पकड़ाई

(2) तद्धित—संज्ञा, विशेषण आदि में जो प्रत्यय लगते हैं वे तद्धित प्रत्यय कहलाते हैं तथा तद्धित प्रत्यय से बने शब्द तद्धितान्त कहे जाते हैं, जैसे:—

लोहा—लोहार	बीशू—बशाही
घराट—घराटी, घरटाई	फरनाई—फरनाईएं
सोना—सुनार	स्कूल—स्कूलटू
खच्चर—खच्चराला	लौ (काटना)—ल्वहैरी

कृदन्त और तद्धित में अन्तर—कृदन्त प्रत्यय धातु या क्रिया में लगता है और तद्धित संज्ञा विशेषण आदि में लगता है, जैसे:—

लड़ना	आई	लड़ाई	कृदन्त
लौना	वाई	लवाई	
नींदना	आई	निंदाई	
लकड़	एहरा	लकड़हैरा	तद्धित
कैण	एहरा	कणैहरा	
घास	एहरा	घसैहरा	

कर्तृवाचक : जिससे क्रिया के करने वाले का अर्थ जाना जाता है । ऐसे शब्द को कर्तृवाचक कृदन्त कहते हैं, जैसे–लिखने, आला, खिलाड़ी, नट्ुवा, बाजणी, गैत्रु आदि ।

इस प्रकार मुख्य प्रत्यय निम्नलिखित हैं––

आला––पढ़ने वाला, खाने आला, पीने आला, ताछने आला, काटने आला, टेवनै आला, डेवनै आला, रौहनै आला, भागने आला, उठावनै आला, देखने आला, खच्चरा आला ।

इया––घड़िया, सिरमौरिया, बाजिया, थागीया, लादिया, कांगड़िया, लौइया, काटिया, खशिया ।

आड़ी––पहाड़ी, बाड़ी, शाड़ी, ताड़ि, गाड़ी ।

त्रु–– गैत्रु, मछैत्रु, चैत्रु, जात्रु, घालत्रु, बजैत्रु ।

ऊ–– खाऊ, गाऊ, लाऊ, बिगाड़ु, नवाड़, जवाड़ु, कमाऊ, गंवाऊ, कोटगुरु, मंझोलू, चड़ोलू ।

आई–– घरटाई, हलवाई, टराई, शिमलाई, पराई, घराई, शिलड़ाई ।

अन–– फाचन, नाचन, घासन, इन्द्रासन, सिंहासन, कढ़ासन ।

एरा–– मछलैरा, त्वहैरा, कनैहरा, लकड़ैहरा, घसैहरा, बनैहरा, पुजैरा ।

आल––बड़ाल, कटाल, टवाहल, जबलाल, घलाल, पडगाल ।

दौ–– पका दौ, काटा दौ, सींजा दौ, शड़ा दौ, गला दौ, सूता दौ, बीऊना दौ, जीवा दौ ।

कर्म वाचक–अगर साधारण भूत की क्रिया (सकर्मक) के आगे, गोई, गोआ लगा देते हैं तो कर्मवाचक कृदन्त बन जाता है, जैसेः–

ना–– बिछावना, चबैना, नतैवना, बझैलना, सतैलना, डैवना ।

नी–– चौटनी, ओढ़नी, राधनी, पराजती, ढालनी, चिणनी ।

आ–– माड़ा, मोटा, रीटा, चीटा, बेला ।

गोआ––उठि गोआ, बोशी गोआ, देखि गोआ, शुणि गोआ, बोली गोआ ।

गोई––गिरी गोई, शुणि गोई, खाई गोई, पढ़ि गोई, लिखि गोई, वाभि गोई, खोलि गोई ।

कारण वाचक––क्रिया के साथ न, नो, नी अन्, ई, ऊ लगाकर जो शब्द बनाए जाते हैं वे कारण वाचक कृदन्त कहे जाते हैं, जैसेः–

ना–– ढकना, वामना, ओइछना भागना, हाड़ना, शोरना, थागना, बशैलना, बोठना, उठना ।

नो–– बोलना, शणावनो, दखैलनो, राहवनो ।

[सम्पादक, हिमशिक्षा,
शिमला-1]

भाषा का स्वभाव और पहाड़ी भाषी जनप

—शशी रानी शर्मा

भाषा बोलने की क्रिया है और अन्य शारीरिक क्रियाओं की भांति इस का भी मुख्य आधार शरीर के अंग हैं। नाभि प्रदेश से उठकर हृदय प्रदेश से होती हुई वायु की हिलोर मुख विविर के विभिन्न स्थानों पर विभिन्न प्रकार से टकरा कर ध्वनि उत्पन्न करती है। उस ध्वनि से नियमित रूप में खण्ड बनते हैं, वही खण्ड वर्ण और स्वर बनाते हैं। एक अद्भुत आश्चर्य की बात है कि लगभग चार दर्जन ध्वनि-खण्डों ने चार युगों के अपार ज्ञान को सुरक्षित रखा। उस सारे सांस्कृतिक दाय को तथा वर्तमान विधाओं के बढ़ते क्षितिज को आगामी संतति का सोचने-पढ़ने में भी वे चार दर्जन ध्वनि-खण्ड पूर्णतया सक्षम हैं।

बोलने की क्रिया, उसे समझने की क्रिया तथा बढ़ते ज्ञान को भाषा के द्वारा प्रकाशित करने की क्रिया बड़ी सरल है। ध्वनि से ध्वनि-खण्ड बनते हैं, उन्हें ध्वनि-ग्राम भी कहा जाता है। उन से शब्द खण्ड बनते हैं, उन्हें रूपग्राम कहा जाता है। रूपग्रामों से सार्थक शब्द और शब्द समूह से वाक्य, वाक्य से अभिप्राय कथन होता है। कई बार एक अकेला शब्द ही वाक्य का कार्य करता है। शब्द और वाक्य में अर्थ कैसे जुड़ा और फिर अर्थ कैसे प्रकाशित हुआ इस विषय में मतभेद बना रहा है। अर्थ न तो अकेली ध्वनि में है, न अकेले ध्वनिखण्ड में। अर्थ वास्तव में मानवीय सामाजिक परम्परा और संस्कार से उठकर शब्द और वाक्य में जुड़ा होगा। मानवीय समाज के संस्कार ही अर्थ में परिवर्तन करते हैं और इसी तरह भाषा का विकास, विस्तार और प्रसार होता रहता है। सामाजिक जीवन में रहते हुए मानव-शिशु अपने को पहले छ: वर्षों में अपनी शारीरिक और मानसिक रचना की क्षमताओं से अपने समाज की भाषा रचना के ढांचे को पूरी तरह समझ लेता है। भाषा का प्रयोजन सामाजिक पारस्परिक क्रिया को पक्का करना, सहयोग बढ़ाना और भावों-विचारों को अभिव्यक्त करना है। प्रत्येक भाषा अपने समाज की सम्पत्ति है उसमें उस समाज के सामाजिकों के भावों, विचारों, आवश्यकताओं, अपेक्षाओं की पूर्ति है। अतः एक भाषा को दूसरी भाषा से बड़ी या छोटी कहना अनुचित है। भाषा का किसी स्थान विशेष से भी सम्बन्ध नहीं होता। जैसे पुष्प की सुगन्धि अपनी क्यारी की सीमाओं को लांघ कर अन्यत्र जा पहुंचती है वैसे ही भाषा के अच्छे साहित्य की सुगन्धि उस भाषा के क्षेत्र से बाहर चली जाती है। कविगुरू रवीन्द्र नाथ ठाकुर की गीतांजली बंगला भाषा में है परन्तु उसकी सुगन्धि बंगला भाषा से बाहर भी है। इसी तरह मध्य-काल में ब्रज-भाषा के माधुर्य की सुगन्धि ब्रज प्रदेश से बाहर पहुंचकर पेशावर से ढाका तक समस्त उत्तरी भारत में अनुभव की जाती थी।

किसी भाषा को बोलने वाले लोग अपने जीवन, अपने समाज और अपने आसपास की प्रकृति की जिन-जिन क्षेत्रों में क्रियात्मक रुचि लेते हैं उनकी भाषा की शब्दावली में और शब्दकोष में उन उन क्षेत्रों के शब्द ही अधिकांश होते हैं। शब्दावली आसपास के परिवेश की लाभदायक वस्तुओं और भावों तक सीमित होती है। मनुष्यों का समाज अपने परिवेश से जितना अधिक लाभ उठाना सीख लेता है उतनी अधिक शब्दावली उसकी भाषा में जमा होती जाती है। यही कारण है कि एस्कीमो की भाषा में वर्फ के लिए अधिक शब्द हैं और अरबों की भाषा में ऊंट के लिए। जो लोग रंगों के महीन और सूक्ष्म अन्तरों को परखने के अभ्यासी नहीं हैं, उनकी भाषा में रंगों के लिए अधिक शब्द नहीं हैं। कास्का इंडियन की भाषा में नीले और हरे रंग के लिए एक ही शब्द है। प्रत्येक भाषा के व्याकरण का एक ढांचा होता है उस ढांचे से उस भाषा के भाषियों की विचारधारा और भावजगत प्रभावित होता है। प्रत्येक समाज अपने अनुभवों को किस प्रकार से भाषा में रजिस्टर करता है, यह बात उसकी भाषा के व्याकरण के ढांचे पर निर्भर करती है। यदि अंग्रेजी भाषा आगमनात्मक शैली के अनुभवों को रजिस्टर करने में अधिक सक्षम है तो फ्रेन्च भाषा निगमनात्मक अनुभवों के लिए। विशेष तथ्यों से सामान्य की ओर जाने वाली आगमनात्मक शैली अपने समाज को विस्तारवादी बनाती है, वह समाज बस्तियां बसाने के कार्य में अधिक सफल होता है।

भाषाई दृष्टि से यदि भारत को एक बड़ा महादेव कहा जाए जिसने अनेक भाषाओं और अनेक जातियों को अपने ऊपर सहारा हुआ है तो हिमाचल प्रदेश को भी एक छोटा महादेव अवश्य कहना होगा। यह प्रदेश भी अनादिकाल से अनेक जातियों की शरण-भूमि रहा है। अनेक जातियां जब आपस में व्यवहार करती हैं तो वे अपनी-अपनी जातीय भाषा की सीमा को लांघ कर दूसरे की भाषा सीखती हैं। फलस्वरूप जातियों के बंधन टूटते हैं और एक सामाजिक भाषा बनती है जिसमें सभी जातीय भाषाओं के कुछ कुछ शब्द रहते हैं। यातायात के साधनों के अभाव में आने जाने की कठिनाइयों के कारण प्रादेशिक और स्थानिक रूप टिक जाते हैं। यदि वहां रहने सहने के ढंग भी अलग बन जाएं तो वे स्थानिक रूप दृढ़ हो जाते हैं। उन दृढ़ रूपों में से जिस रूप में साहित्य-रचना पहले आरम्भ हो जाए और उस रचना में मानवीय समाज की हित भावना और मधुरता दोनों गुण हों तो वह साहित्य-रचना पास पड़ौस के भाषीय समुदायों में बिखरने लगती है और भाषा का वह रूप विशेष प्रसिद्ध होने लगता है। यदि उस भाषा के लोग व्यापार और रोजगार के लिए अपने सीमित दायरे से बाहर जाने लगें और अपने आचरण और व्यवहार की उच्चता के कारण पास पड़ौस में अनुकरणीय बन जाएं तो उस भाषा की साहित्य-रचना दृढ़ हो जाती है। यदि साहित्यकार पास पड़ोस की स्थानीय भाषाओं और लोगों का आदर करें और उनके शब्दों और भावों दोनों को ग्रहण करें तो सांझी साहित्य का विकास होता है।

भाषा का सहज स्वभाव है कि उसके शब्द अपने क्षेत्र के बाहर भी सरकते रहते हैं। जब ध्वनि-परिवर्तन की अनियमितताएं बढ़ती चली गईं तो ध्वनि-नियमों में अविश्वास बढ़ने लगा। कुछ विद्वानों ने बोलियों का अध्ययन आरम्भ किया। सन् 1879 में वैंकर (Wenker) का बोलीगत अध्ययन इतिहास प्रसिद्ध है। वैंकर ने 1879 से 1888 तक नौ वर्ष लगातार कार्य किया। उनका कार्य करने का ढंग यह था कि उन्होंने

सर्वप्रथम एक प्रश्नावली बनाई । उसमें लगभग चालीस वाक्य रखे । उन वाक्यों में प्रतिदिन के व्यवहार की बातें थीं । और उनका विन्यास इस ढंग से किया गया था कि उन से बोलीगत विभिन्नताओं का अधिक से अधिक पता लग सके । उनकी मूल रुपरेखा यह थी कि 40, 736 पाठशालाओं के अध्यापकों से सामग्री एकत्र करवाई जाए। परन्तु जब उन्होंने कार्य आरम्भ किया तो उसमें विस्तार हो गया और वह संख्या बढ़कर 49,362 हो गई। उस विशाल सामग्री से वैंकर ने यह निष्कर्ष निकाले कि बोलचाल की व्यावहारिक भाषाओं पर व्याकरण का कठोर नियंत्रण नहीं रह सकता । बोलियों और लोक शब्दों को एकत्र करने के लिए लोक-व्यवहार का जानना और उसका आदर करना आवश्यक है। इसी परम्परा में शब्द-भूगोल का कार्य आगे बढ़ा और शब्द मान-चित्रावलियां बनाई गईं । इस विद्या के प्रख्यात विद्वान ज्यूल गिलिरेअन (Jules gillieron) थे। उन्हें एडमौड़ एडमोंट नामक महानुभाव का सहयोग मिला। वह एक पंसारी थे परन्तु उन्हें ध्वनियों के यथावत् लेखन की एक प्राकृतिक शक्ति प्राप्त थी । उन्होंने पूर्वरचित वाक्यावली और प्रश्नावली का सहारा नहीं लिया । इसके विपरीत सीधे प्रश्नों के द्वारा सामग्री को संचय किया । इस से सामग्री में अधिक स्वाभाविकता आई तथा कुछ नूतन अभिव्यक्तियां भी प्राप्त हुईं । गिलिरेअन ने जिस शब्द-भूगोल की पद्धति की स्थापना की, उसने धीरे-धीरे व्युत्पत्ति शास्त्र की पुरानी पद्धतियों और उनकी भूलों को बहुत हद तक दूर किया। उन्होंनें यह स्थापना की कि किसी भूखण्ड पर बिखरे हुए शब्दों का उसी प्रकार अध्ययन और विश्लेषण करना चाहिए जिस प्रकार से भूगर्भ विद्या के विद्वान भूमि और भूमि की मिट्टी की पुरानी वस्तुओं का अध्ययन करते हैं । भूखण्ड पर बिखरे शब्द उस भूखण्ड पर रहने, बसने वाले लोगों का इतिहास बनाने में सहायता देते हैं ।

हिमाचल प्रदेश की प्रादेशिक भाषा पहाड़ी के विकास के इस समय में इस भूखण्ड पर फैले और बिखरे शब्दों की मान-चित्रावलियां बननी चाहिएं । उन से यह विदित होगा कि कुछ शब्द एक ही रूप में सारे हिमाचल प्रदेश में बोले जाते हैं ।

भाषा का एक अन्य स्वभाव यह है कि स्वर-व्यंजन आदि उसके अपने अंगों के संयोग के प्रकारों से उसका प्रभाव घटता बढ़ता है । भाषिकी नैपुण्य और काव्य-सौष्ठ में तो गहन सम्बन्ध है। जब व्यक्ति के आभ्यान्तर में भाषिक नैपुण्य सम्पन्न हो जाता है तभी वह काव्यकार बनता है । भाषा नैपुण्य के लिए सर्वप्रथम ध्वनि के आधारों पर नैपुण्य प्राप्त करना अनिवार्य होता है। प्रत्येक भाषा में स्वर और व्यंजन विषयक ध्वनियों के आपसी सम्बन्धों और उनकी आवृत्तियों के द्वारा प्रभाव और सौन्दर्य उत्पन्न होता है । आवृत्तियों में स्वर आवृत्ति, व्यंजन आवृत्ति दोनों की अलग-अलग विशेष आवृत्तियां, व्यंजन गुच्छों की आवृत्ति अर्ध स्वर वृत्ति, संयुक्त स्वर आवत्ति, स्वरों तथा व्यंजनों के विविध संयोग और फिर उन संयोगों की आवृत्ति आदि आदि। इन सभी प्रकार के संयोगों और आवृत्तियों में सहज कवि को सहज नैपुण्य प्राप्त होता है। उसकी वाणी इतनी सधी होती है कि उसे विशेष प्रयास नहीं करना पड़ता। सहज भाषा में अपने ढंग का चमत्कार होता है । इसके अनुसरण में पश्चिम में एक सम्प्रेषण सिद्धांत बना है। उसके अनुसार स्वरों-व्यंजनों की आवृत्ति का विश्लेषण करके लेखकों के मनोभाव की गवेषणा की जा सकती है। कुछ सीमा तक प्रतिपादित विषय का भी पता लगाया जा सकता है। लेखक की निजी विचारधारा का, उसके

परिवेश और समाज की विचाराधारा का उस समय विशेष की विचारधारा का कुछ सीमा तक पता लगाया जा सकता है। भाषा में तद्‌भव, तत्सम और देशज शब्दों की गिनती से यह भी पता लग सकता है कि अमुक लेखक और उसका समाज किस प्रकार की रुचि का है। अभिजात्य रुचि से तत्सम शब्दों का प्राधान्य होता है और मध्य-वर्गीय कामकाजी रुचि तद्‌भव के बाहुल्य को विरचित करती है। पंक्तियों और चरणों के संयोग से छन्द बनते हैं। गम्भीरता के लिए छप्पय की तरह लम्बा छन्द चाहिए और निश्चय और तसल्ली के लिए दोहा।

इस प्रकार समानार्थक शब्दों में भी अन्तर होता है। 'बात करने' और बतलाने' में अन्तर है। 'बतलाने' से आत्मीयता, घनिष्ठता, विषय की पारस्परिकता आदि का आभास होता है; इसी श्रेणी का 'बताना' साधारण सूचना देने के अर्थ में आता है। इसी तरह 'मनुहार' शब्द में मनोबल है, मान है, महिमा सी, कुछ आंगिक क्रियाएं सम्मिलित हैं। प्रत्येक व्यक्ति के लिए भाषा की निपुणता आवश्यक और सहायक रहती है। अच्छी से अच्छी बात बिना निपुण भाषा के अपना प्रभाव खो देती है।

भाषा के स्वभाव की प्रमुख बातें ध्यान में रखने के पश्चात् अब हम पहाड़ी–भाषी जनपदों की ओर आते हैं। इस प्रसंग में 'पहाड़ी भाषा' का अभिप्राय हिमाचल में प्रच-लित पहाड़ी भाषा से है और जनपद का अभिप्राय ऐसे जन–समूह से है जो एक विशेष भौगोलिक स्थिति में रहते रहते अपने ढंग के संस्कार बनाते बनाते एक ऐसे समुदाय के रूप में दृढ़ हो गया हो जिस की राजनीति, अर्थनीति, युद्ध नीति और समाजशास्त्रीय आचरण दूसरे प्रकार की भौगोलिक स्थिति में रहने वाले जन समूह से अलग हों। हिमा-चल प्रदेश भौगोलिक दृष्टि से एक विशेष भूदृष्य है। पर्वतमालाओं, नदियों और नालों ने यहां के जन समूहों के खुले आवागमन को सदैव बाधित किया है और उसे विवश किया कि वह सुविधापूर्वक दिशाओं में ही बढ़े या पीछे हटे। यदि हम एक बार इस सामान्य बात को मान लें कि प्रागैतिहासिक काल में मनुष्य न तो ऊंचे ऊंचे पहाड़ों में आबाद हुआ और न ही मैदानों की दल दल में बसा। बल्कि वह पठार वाले अर्ध पहाड़ी क्षेत्रों में बसा था। ऊंचे पहाड़ों में सख्त चट्टानें थी और मैदानी इलाकों में गहरी दलदलें और घने जंगल पठारी इलाकों में पत्थर मिली रेतिली मिट्टी थी तथा हल्की और छोटी झाड़ियां थीं। अत: ऐसे क्षेत्र ही आदि मानवों के निवास के लिए उपयुक्त थे। इस मान्यता को हिमाचल प्रदेश पर लागू करके देखने पर यह अनुमान लगाया जाता है कि शिवालिक की मंझली पहाड़ियों के पठार उन मानवों के निवास की भूमि बनी होगी। यहीं से भूमि के बेटे अवसर और सुविधा पाकर ऊंचे पहाड़ों की ओर चढ़े और दलदली मैदानों की दल दल के खुश्क होने पर नीचे उतरे। अत: शिवालिक में हिमाचल के आदि जनपद बने थे। उन आदिमानवों के जनपदों के सम्बन्ध में जानने के लिए हमारे पास आज कोई भी साधन नहीं। भूगर्भ के शास्त्री और पुरातत्ववेत्ता मिलकर खुदाई से प्राप्त पत्थर के औजारों से कभी कुछ अनुमान बनाकर शायद कुछ इतिहास बता सकें। महात्मा बुद्ध के पश्चात् इतिहास काल आरम्भ हुआ माना जाता है। तब कांगड़ा क्षेत्र में आयुद्धजीवी कबीले रहते थे जो शिव के बड़े पुत्र कार्तिकेय के अनुयायी थे। सम्भवत: उसी युग में कालका-काल्पा क्षेत्र में कुनिंद और किन्नर कबीले रहते थे।

कुनिंद ही आज के कनैतों के पूर्वज रहे होंगे। कार्तिकेयों, कुनिंदों और किन्नरों से पूर्व आस्ट्रो- एशियाटिक मानव परिवार के वे लोग यहां आकर यत्र तत्र बसे होंगे जिन्हें आरम्भ में कोल कहा गया और जब वे पानी के चश्मों के पुजारी हुए तो वे ही नाग कहलाए। उन्हीं की कलमों को मुंडा भी कहा जाने लगा। अतः कोल, नाग, मुंडा, कुनिंद, किन्नर, कार्तिकेय आदि जन-समूह समय-समय पर तुर्किस्तान के रास्ते उतरने वाले रूसी, युरोपी घुमन्तू कबीलों के साथ मिलकर कुछ और भी नई शाखाएं बनाते रहे।

ईसा की पहली शताब्दी के आस-पास कुषाणों ने शिवालिक पर आधिपत्य जमाया। कुषाण राज्यकाल में सामाजिक जीवन के साधन पहले की अपेक्षा अधिक सुविधापूर्ण थे अत: उस समय शिवालिकी मानव-समूह अधिक टिक कर रहने लगे और जनपद उभरने लगे। अब जनपदों को बुद्ध-धर्म का आधार मिला और धार्मिक समुदायों का सामाजिक जीवन दृढ़ हुआ। फलस्वरूप उनकी भाषा में टिकाव आया। सम्राट् अशोक के समय में मैदानों की प्राकृत भाषा पहाड़ों में प्रवेश पाने लगी और शिवालिक के मानवों ने प्राकृत भाषा की वाक्य-रचना को ग्रहण कर लिया। अपनी पुरानी बोलियों के शब्दों को उसी प्राकृत वाक्य-रचना में यत्र तत्र फिट कर लिया। ऐसी शिवालिकी प्राकृत का नाम ग्रन्थों में नहीं है। कारण स्पष्ट है कि उस तथाकथित शिवालिकी प्राकृत में ग्रन्थ-रचना नहीं हुई, वह तो केवल यहां के बौद्धों की बोलचाल का साधन थी।

गुप्त काल में शैवों, वैष्णवों, बौद्धों और जैनों आदि सभी मतमतांन्तरों की अच्छी-अच्छी बातों का स्वयमेव एक सार बनता गया। जनसाधारण उस सारधर्म को ग्रहण करना चाहता था। इस सार धर्म ने सभी अलग-अलग जनपदों की बोलियों को भी प्रेरणा दी। प्रेरकों की सीमाओं को लांघ कर एक ऐसी उप-भाषा को जन्म दिया जो पास पड़ौस के लोगों द्वारा भी समझी जाए। इस की आवश्यकता इस लिए भी पैदा हो चुकी थी क्योंकि उन दिनों लोगों में आपसी मेल मिलाप अधिक बढ़ गया था। अत: उस पुरानी शिवालिकी प्राकृत से आदिम पश्चिमी पहाड़ी भाषा का रूप स्थिर होने लगा। यमुना से चनाब तक जितना पठारी और पहाड़ी क्षेत्र है उसमें शिवालिकी प्राकृत से उत्पन्न उस पश्चिमी पहाड़ी भाषा का विस्तार था। पहाड़ों की ऊंची ऊंचाई और पठारों की मंझली ऊंचाई ने उसके कुछ रूप बनाए। एक रूप है—यमुना के पश्चिमी पानियों से सतलुज के पूर्वी पानियों की शैल-मालाओं में प्रयुक्त रूप। दूसरा रूप पौंटा की पठार से नूरपुर की पठार तक फैला प्रयुक्त जिसे समझने में किसी भी राष्ट्र भाषा ज्ञाता को कोई दिक्कत नहीं आती और उसके बावजूद जो अपनी विशिष्टता के कारण पहाड़ी है। उपर्युक्त पहाड़ी शैलमाला और पठारी क्षेत्र के भीतर सोलन से चम्बा तक प्रयुक्त स्थानीय भाषा बाहरी शिवालिकी और अन्दरूनी पहाड़ी से हटती सटती हुई बहुत कुछ को जोड़ती हुई और कुछ कुछ को नकारती हुई एक अजस्र धारा और अदृश्य पवन की तरह वर्तमान है। यह अंजना किसी ऐसे पवनपूत रूपी रचयिता की प्रतीक्षा में है जो सीमाओं को लांघने की सामर्थ्य रखता हो। अब यह कन्या पार्वती होने वाली है।

[—द्वारा डा० अशोक, 71/74
लोयर बाज़ार, शिमला।]

शैली-विज्ञान और पहाड़ी काव्य-भाषा

–आशा गोयल

हर प्रदेश में और हर युग में अपनी परिस्थितियों के अनुरूप एक सांस्कृतिक चेतना उभरती है। वह चेतना एक चिन्तन परिवेश बनाती है। चिन्तन के उस दायरे में कुछ चिन्तक सोच विचार करते हैं। उस सोच समझ से कुछ भाव, विचार क्रियाशील होते हैं। एक नया फैलाव आता है, नए क्षितिज बनते हैं और उनके अनुरूप नई टैकनीक आती है।

शैली-विज्ञान का स्थान साहित्यिक आलोचना के अन्तर्गत है। यह एक सिद्धान्त भी है और एक प्रणाली भी। इसे भाषावादी आलोचना भी कहा जाता है। भाषावादी आलोचना-सिद्धान्त के अनुसार साहित्य एक शाब्दिक कला है। भाषा की सीमाएं साहित्यिक कृति के लिए सीमाएं बनाती हैं। भाषा केवल कृति का माध्यम ही नहीं है अपितु कृति का जन्म-प्रदेश भी है। भाषा के भीतर से कृति जन्म लेती है। भाषा की अपनी विशेषताएं विकासक्रिया करती हैं उनसे ही साहित्यिक कृति उपजती है अतः भाषा क्रिया का फलन ही साहित्यिक कृति है। इस दृष्टिकोण से कविता की भाषा स्वयं में साध्य है।

शैली-विज्ञान के इस नए सिद्धान्त ने भाषा और साहित्य के आन्तरिक गहन सम्बन्ध को स्थापित किया है। इसके अध्ययन के बाद मनीषी विद्वान कम से कम इतना समझने लग गए हैं कि जो साहित्यशास्त्री भाषा-वैज्ञानिक समस्याओं और प्रणालियों से परिचित नहीं है, वे अपने समय से पीछे हैं। इसी तरह जो भाषा-वैज्ञानिक इस बात से परिचित नहीं कि भाषा-क्रिया साहित्य-रूप में फलित होती है वह भी अपने समय से पीछे है। समय की मांग यह है कि भाषा और साहित्य के सहज सम्बन्ध को स्वीकारा जाए और दोनों को एक दूसरे का पूरक माना जाए।

कवियों और लेखकों के निजी और व्यक्तिगत अनुभव सदैव बिम्बपरक भाषा में अभिव्यक्त होते हैं। बिम्बों के पीछे घनीभूत अनुभूतियां होती हैं। उनसे शब्दों के अर्थ को गत्यात्मकता प्राप्त होती है। बिम्ब–निर्माण की क्रिया वास्तव में मानव-चेतना की एक सहज क्रिया है। स्वप्नचित्रों, कलाचित्रों, अचेतन मन के आर्किटायपों (Archetypes) में बिम्ब–निर्माण की क्रिया कार्य करती है। अतः भाषा में बिम्ब–निर्माण की क्रिया भी कवि के अचेतन मन के संस्कारों की गहराइयों से ही उपजती है वस्तु-बिम्ब बनाने से भाव–बिम्ब बनाने की प्रक्रिया तो केवलमात्र भाषा में होती है।

शब्दों के माध्यम से कवि के अपने अचेतन मन की मिथकीय सिसृक्षा (Mythical creativity) अभिव्यक्ति पाती है। इसीलिए कहा गया है कि कवि भाषा का जादूगर है। उसके शब्दों में एक वेगवती शक्ति रहती है। सामान्य भाषा की न्यूनताओं को कवि की मिथकीय सिसृक्षा दूर करती है। अन्तर्जगत के भाव बहिर्जगत की भाषा में बिना मिथक और बिम्ब का सहारा लिए सफलतापूर्वक व्यक्त नहीं हो सकते। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि अज्ञेय ने लिखा था–

काव्य सबसे पहले शब्द है
और सब से अन्त में भी
यही बात बच जाती है कि
काव्य शब्द है।

कवि के काव्य–निर्माण करने वाले व्यक्तित्व को शब्द ही तराशते हैं।

भाषा–क्रिया का अन्तिम और सूक्ष्म फलन कविता में ही घटित होता है तभी कविता को कालजयी कहा गया है। प्रसिद्ध कवि मुक्तिबोध का कथन है–

"नहीं होती, कभी भी खत्म कविता नहीं होती
कि यह आवेग–त्वरित काल–यात्री है
मैं उसका नहीं कर्ता।
पिता––धाता
कि वह कभी दुहिता नहीं होती
परम स्वाधीन है वह विश्वशास्त्री है"।

शैली विज्ञान ने काव्यभाषा को एक 'स्वनिष्ठ' स्थान प्रदान किया है।

इसी दृष्टिकोण से हम पहाड़ी काव्यभाषा का संक्षिप्त अध्ययन करते हैं।

काव्यभाषा का प्रकरण आरम्भ करने से पूर्व यहां राजशेखर के काव्यमीमांसा में वर्णित 'काव्यपुरुष' का उल्लेख करना संगत होगा। काव्य का सादृश्य पुरुष के समान करते हुए कहा गया है कि––

शब्द और अर्थ तेरे शरीर हैं।
संस्कृत भाषा मुख है। प्राकृत
भाषाएं तेरी भुजाएं हैं।
अपभ्रंश भाषा जंघा है।
पिशाच भाषा चरण है।
मिश्र भाषाएं वक्षस्थल हैं।

हे काव्यपुरुष ! तू सम, प्रसन्न, मधुर, उदार और ओजस्वी है। तेरी वाणी उत्कृष्ट है। रस तेरी आत्मा है। छन्द तेरे रोम हैं, प्रश्नोत्तर, पहेली-समस्या आदि तेरे वाग्विनोद हैं। भावी अर्थों को बताने वाली श्रुति भी तेरी स्तुति करती है।

इसी प्रकरण में आगे काव्यपुरुष को मर्त्यलोक का महादेव कहा गया है। दसवीं शताब्दी के अन्त में आचार्य कुन्तक ने अपने ग्रन्थ 'वक्रोक्ति जीवितम्' में लिखा है कि लोक-यात्ना के संचालन के लिए भृत्य मित्र, स्वामी आदि का आकर्षण आदि अन्य कार्य भी काव्य के बिना भली प्रकार से सम्पन्न नहीं हो सकते।

काव्य पुरुष और उसका अद्‌भुत चमत्कार भाषा द्वारा उपलब्ध होता है। कवि सुमित्रा नन्दन पंत वाणी का कर्त्तव्य बताते हुए कहते हैं--

"तुम वहन कर सको जनमन में मेरे विचार।
वाणी मेरी चाहिए तुम्हें क्या अलंकार"

काव्य में भाषा के महत्व को प्रकाशित करने के पश्चात् अब हम काव्यभाषा के सम्बन्ध में सिद्ध नियमों और तथ्यों का संक्षेप में उल्लेख करते हैं। काव्यसर्जन के क्षणों में कवि किसी स्थिति-विशेष से इतना प्रभावित और आविष्ट (Possessed) हो जाता है कि वह यह जान नहीं पाता कि वह कविता लिख रहा है अथवा कविता उसे बना रही है--

लोग हैं लागि कवित्त बनावत। मोहि तो मेरे कवित्त बनावत॥

किसी अनूप रूप वाली "लुनाई की लछमी" उसके चित्त को चुरा लेती है और उसकी अकेली चेतना उस लछमी के अभाव में केवल शब्दों के साथ संघर्ष करती है। जैसे वियोगी के भेद को योगी नही जान सकता वैसे कविता-सर्जन के क्षणों को अकवि नहीं जान सकता!

सुजान कहै कला कोटि करौ पै।
वियोगी के भेद को जोगी न जानै॥

तब उसकी स्थिति 'रोमहि रोम सुजान विराजति' वाली हो जाती है। चेतना के प्रत्येक अंग में शब्द संघर्ष करते हैं।

प्रत्येक कवि अपनी कविता के माध्यम से फिर से जन्म लेना चाहता है, वह अपने व्यक्तित्व को बदल कर एक नया व्यक्तित्व धारण करना चाहता है!

"मैं अपनी अधूरी दीर्घ कविता में
उमंग कर

जन्म लेना चाहता हूं फिर से
कि व्यक्तित्वान्तरित होकर
नए सिरे से समझना और जीना
चाहता हूं, सच

कविता के माध्यम से यह व्यक्तित्वान्तरण वस्तुतः भाषा प्रयोग का अन्तरण है !

और भाषा जो मैं बोलना चाहता हूं।
मेरी जीह्वा पर नहीं
बल्कि दान्तों के बीच की जगह में सटी है ।

व्यक्तित्वान्तरण के माध्यम के रूप में पहाड़ी भाषा का क्या कार्य रहा है, यह बात द्रष्टव्य है। कवि अपना व्यक्तित्वान्तरण भी करता है और अपने समाज का भी। हिमाचल प्रदेश के भावात्मक व्यक्तित्व का निर्माण यहां के अगुआ समाज–राजनीति वर्ग के महारथियों ने तो किया ही है परन्तु साथ ही इसमें यहां के कवियों का बड़ा हाथ है। कहा जाता है कि किसी भाषा को राष्ट्रभाषा या राजभाषा बना देना आसान है परन्तु किसी भाषा को घर की भाषा बनाना कठिन होता है। घर की भाषा बनने के पश्चात् ही वह भाषा एकान्त–चिन्तन की भाषा बनती है और तभी वह भाषा काव्यभाषा बन पाती है। काव्यभाषा व्यक्ति के एकान्त क्षणों की भाषा है।

पहाड़ी के कवियों ने पहाड़ी भाषा का काव्यस्तर पर उठाने के जो प्रयत्न किए हैं, उनका अंशतः प्रकाशित रूप निम्नलिखित है :—

1. मेरा देश म्हाचल–पीयूष गुलेरी, 1969
2. काव्य धारा भाग (1) शिक्षा विभाग, 1971
3. चेते–गोतम व्यथित, 1969
4. धारा दीयां धुप्पां–श्री शेष अवस्थी, 1971
5. गीतां री सीर–श्री कान्त प्रत्यूष, 1971
6. काव्य धारा (भाग दो) भाषा विभाग, 1974
7. सदियां रे मोड़–श्री मनसा राम शर्मा, 1975
8. मेरा छैल हिमाचल–श्री भगत राम मुसाफ़िर, 1972
9. पातथरो रे महाणु–श्री जयदेव कर्ण, 1973
10. आस परदेसियां री–रूप शर्मा निर्दोष, 1974
11. मेरा हिमाचल मेरा घर–रूप शर्मा, 1973
12 संझा रे परछोवें–सुरक्षा कुमारी, 1974
13. रंग विरगें फुल्ल–नरेन्द्र अरुण, 1974

इन तेरह पुस्तकों में ग्यारह तो भिन्न कवियों की अपनी अपनी निजी कविताओं के संकलन हैं और दो पुस्तकें विभिन्न कवियों की विभिन्न कविताओं के संकलन हैं। ये

दोनों संकलन सरकारी विभागों से प्रकाशित हैं, एक शिक्षा विभाग से और दूसरा भाषा विभाग से। अत: इन दोनों संकलनों में सभी को प्रतिनिधित्व देने वाली सरकारी नीति ही प्रभावकारी रही मालूम होती है, परिशुद्ध विद्यायी (अकैडेमिक) चयन नहीं। काव्य धारा भाग दो के 'दो शब्द' में कथन है।

"यह पुस्तक ग्राम्य प्रजा के
भावों की तरजुमानी है
और हमारे कवियों के काव्य
शिल्प की तस्वीर है।"

—श्री स्वतन्त्र कुमार आलोक

उपर्युक्त पुस्तकों के सिंहावलोकन करने से स्थल रूपेण कहा जा सकता है कि पहाड़ी कवियों की तीन कोटियां हैं।

(1) भाषा भाषिक सर्जनात्मक।
(2' लोक गाथिक।
(3) विचार प्रतिपादक।

श्री लालचन्द प्रार्थी, श्री पीयूष गुलेरी, चन्द्रशेखर भाषिक सर्जनात्मक हैं। व्यथित, भगतराम और जयदेव किरण लोक गाथिक तथा राकेशी हिमप्त: और गुप्त विचार प्रतिपादक, शेष बहुत से समारोही शौकीन कवि हैं। श्री मनसा राम अरुण का स्थान अलग सा है। 'सदियां रे मोड़' एक भाव प्रधान लघु खण्ड-काव्य है कामायनी के ढंग पर भाव-प्रकाशन करने का प्रयास है। भाषिक सर्जनात्मकता में पीयूष ध्वन्यात्मकता के मोह में उलझ जाते हैं, ग्राम्य-जीवन के गहन परन्तु अप्रचलित शब्दों को टकसाली बनाने के इच्छुक हैं। प्रचलित शब्दों को प्रचलित करना कविता के मिज़ाज के ठीक अनुकूल नहीं हैं। श्री प्रार्थी जी ने पहाड़ी में बहुत कम लिखा है वह मूलत: उर्दू के शायर और हिन्दी के गद्यकार हैं। पहाड़ी कविता में वह उर्दू वाली नज़ाकत और नफासत ला सकते थे। उनका विम्वविधान और उपमानयोजना प्रत्यक्ष जीवन से सम्बन्धित है। इसी से उनकी काव्यभाषा में सरलता, सरसता और सुबोधता है। पहाड़ी काव्य-भाषा के विधिपूर्वक अध्ययन के लिए निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किए जाते हैं।

(क) प्रत्येक पहाड़ी कवि की रचनाओं के कठिन शब्दों (हार्डवर्डज़) की सूची बनाई जाए।

(ख) प्रत्येक कवि की रचनाओं में बार-बार आने वाले शब्दों की आवृत्ति मापने के लिए आवृत्ति रेखा (फ्रिकवैंसी कर्व) बनाई जाए।

(ग) प्रत्येक कवि की रचनाओं में से शब्द छांट कर यह देखा जाए कि वह कितने प्रतिशत अप्रचलित शब्दों का प्रयोग करता है और कितने प्रतिशत प्रचलित शब्दों का सहारा लेकर उनमें नया अर्थ भरता है।

(घ) आक्रोश, व्यंग्य और गाली वाले शब्दों की सूची से यह पता लगेगा कि वह कवि वर्तमान से असन्तुष्ट होकर भविष्य निर्माण के निमित्त कितना आक्रोश धारण किए हुए है। वर्तमान और भविष्य का संवाद ही आधुनिकता है। पहाड़ी आधुनिक बन कर ही समाज के लिए उपयोगी बन सकता है। रोमांटिक होकर वह केवल थके दिमागों और हारे दिलों का ही मन बहलाव करेगा।

पहाड़ी कविता की समूची संकल्पना को दृढ़ करना एक महत्वपूर्ण कार्य है। अभी हमारे यहां चम्बयाली कविता, कांगड़ी कविता, महासुई कविता आदि के संकल्प हैं। पहाड़ी कविता के संकल्प के पहाड़ी कवि को प्रदेश में बिखरी शैलियों और चुने हुए अति सुष्ठु शब्दों और मुहावरों का प्रयोग करना होगा। श्री लाल चन्द प्रार्थी की एक कविता 'नार कि एक कटार थिया' इस दिशा में एक प्रयोग था परन्तु वह प्रयोग अभी प्रवाह बनकर शैली नहीं बना है।

[अप्पर फ्लैट,
मोटर गैरेजिज़,
बिलो विक्टोरिया प्लेस,
शिमला-2।]

हमारा सूक्ति-संसार

—कु0 सरोज शर्मा

सूक्तियां लोकजीवन का आवश्यक अंग हैं । जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इन का महत्व है । वास्तव में ये ऐसे सूत्र-वाक्य हैं जो 'देखने में छोटे लगें, घाव करें गम्भीर' । हम अपने अनुभव की धरोहर को किस प्रकार छोटी से छोटी पोटली में दूसरों को दे सकते हैं, इस प्रश्न का उत्तर सूक्तियां ही दे सकती हैं । प्रस्तुत हैं कृषि से सम्बन्धित कुछ रोचक सूक्तियां—

1. चेले-घोपे डौंडी बाज ।
   प्वाध्यां ने नीं करना कदी बी साझ ।

अर्थात् जादू भगाने वाले चेलों, ढोल बजाने वालों तथा पण्डितों (पुरोहितों) से कभी भी खेती की सांझेदारी मत करो क्योंकि इन्हें इतनी फुरसत कहां कि ये खेती की देख भाल कर सकें !

2. जुलाह्यां बाह्या बाह्ण,
   तित पई आह्ण ।
   पझगी ता लुणगे,
   नहीं कपड़ेयां ही बुणह्गे ॥

जुलाहे कपड़े बुनकर निर्वाह करते हैं । उनकी खेती में ओले भी पड़ जाएं तो वे यह मानकर चलते हैं कि अगर कुछ अनाज उत्पन्न हुआ तो काट लेंगे नहीं तो कपड़े बुन कर तो गुज़ारा है ही । अर्थ यह हुआ कि जिस व्यक्ति का मुख्य व्यवसाय कृषि नहीं है वह सफल कृषक नहीं हो सकता अतः यदि कृषि को अपनाना है तो अन्य कार्य छोड़ने पड़ेंगे ।

3. छोकरुआं कने छोल्यां ने मुंह नीं लाणा ।

छोटे बच्चों को एक गाली दो तो दो सुन लो । इसी प्रकार चने खाना आरम्भ करो, स्वाद बढ़ता ही जाएगा और आप न चाहते हुए भी खाते चले जाएंगे । ठीक है, इन दोनों से बचना ही चाहिए ।

4. धाना रा मुल्ख पराला ते ही सुझी जांहां ।

जहां धान बीजे जाते हैं वहां के लोग यदि अपने चावलों के विषय में झूठी जानकारी देना चाहें तो भी नहीं दे सकते क्योंकि लोग पुआल (धान के सूखे पौधे) देख कर ही फसल का अनुमान लगा लेते हैं । अर्थ यह है कि लोगों की धन-दौलत तथा सम्पन्नता के सम्बन्ध में उन के रहन-सहन से ही पता लग जाता है ।

5. बाड़ ही

रक्षक ही भक्ष

6. वड़ेयां रेयां

ऊंची दुकान फीक

7. कणक खेता, ग्

आग्रो ज्वाइयां

गेहूं अभी खेत में है,

का पकवान खा जाग्रो ।

जब कोई भी वस्तु पास

की जाए ।

8. खबे पर जुंगड़ा, घरा

वस्तु तो कन्धे पर उठाई है

वस्तु कहां रखी है ?

9. ग्रौरकर्मा खेती करो, या

अभागा जब खेती करेगा तो या

अर्थात्— सकल पदार्थ हैं ज

कर्महीन नर पावत

10. हल को ठोकण मिल गयो, हर

तिन चीजां उग्राड़ने रहियां, हल,

छोटी सी चीज़ मिल गई ग्रौर प्रसन्न हो

लगाई जाने वाली एक छोटी सी लकड़ी (फल्यूड़ी) मि

कि अब तो हल, बैल ग्रौर बीज ही का प्रबन्ध

हुई समझो ।

11. तिने जे सिर दिया, तिने सेर वी दित्या

जिसने जीवन दिया है उसने भोजन का प्रबन्

अत: चिन्ता करने की आवश्यकता क्या पड़ी है ? कित

12. परहत्थें बणज, स्नेहें खेती, कदी नीं हुन्दे, त

दूसरों के हाथ में दिया गया व्यापार तथा स

कराई गई खेती, ये दोनों बातें तीस से तेत्तीस नहीं होने दे

अपने ही द्वारा सम्पन्न किये जाने पर शोभा देते हैं ।

13. मण्डोलुग्रां मांहां री इक्को ही रास ही ।

अर्थात् सभी लोग एक ही तरह के हैं । जब दो व्यक्ति

बताया जाना हो तो यह कहावत कही जाती है ।

14. गोह कोही पलाहें, उत्तरह्‌गी नव्यां माहें ।

अपना कार्य ठीक हो जाने तथा दूसरे को हानि हो जाने

कही जाती है । अर्थात् गोह (एक प्रकार की बड़ी छिपकली)

के वृक्ष पर है, वह अब नए माह (उड़द) होने पर ही उतरेगी ।

है कि हमने तो लाभ उठा लिया, अब आप प्रतीक्षा करो ।

विविधा

पल भर साथ एक साये का

—किशोरी लाल वैद्य

दिनांक 10 जून, 1975 को ललित कला अकादमी के अध्यक्ष श्री कार्ल खाण्डेलवाला से आराम से भेंट हो सकी। वे इण्डियन इंस्टीट्यूट आफ एडवांस्ड स्टडी में ठहरे हुए थे। चूंकि श्री विश्वचन्द्र ओहरी (हिमाचल राज्य संग्रहालय के क्यूरेटर) से विगत दिन यह तय हुआ था कि यदि हम सुबह नौ बजे उनके यहां पहुंच सकें तो उन्हीं के साथ राष्ट्रपति निवास जाकर श्री खाण्डेलवाला से मिलना सम्भव हो सकता है।

नौ जून को म्यूजियम में पांच बजे 'डांस आफ शिव-ए ट्रिब्यूट टू आनन्द के0 कुमारस्वामी' नामक फिल्म दिखाई जाने वाली थी। यह आयोजन यूनाइटेड स्टेट्स इन्फार्मेशन सर्विस के सहयोग से किया जा रहा था। डा0 नीलमणि उपाध्याय और मैं वहां यथा समय पहुंच गये थे। वहीं पहली बार डा0 कार्ल खाण्डेलवाला के दर्शन हो सके थे। मैं उनसे मिलने के लिये उत्सुक था लेकिन कलाप्रेमी राज्यपाल श्री एस0चक्रवर्ती तथा अन्य दूसरे अधिकारियों के वहां मौजूद होने पर उनसे बातचीत का उपयुक्त अवसर नहीं मिल पाया।

शो शुरू होने से पहले श्री खाण्डेलवाला ने कुमारस्वामी के बारे में एक विशद वार्ता दी जिसने एक उपयुक्त वातावरण बनाने में मदद की। मितभाषी विद्वान से हुई अपनी संक्षिप्त मुलाकात का भी उन्होंने उल्लेख किया। चूंकि शो में गवर्नर तथा लेडी गवर्नर श्रीमति नयना चक्रवर्ती भी थीं, अतः वातावरण में गरिमामय गम्भीरता बड़ी स्वाभाविकता से उभर आई थी।

सुप्रसिद्ध कला-समीक्षक तथा कला-इतिहासज्ञ कार्ल खाण्डेलवाला एक हंसमुख तथा सहज प्रवृत्ति वाले व्यक्ति हैं। अपनी विद्वत्ता तथा पद की गरिमा का अनचाहा एहसास उनमें नहीं है। डा0 उपाध्याय और मैं राष्ट्रपति भवन में पूर्व निश्चित समय पर पहुंच गये थे। परिचय की औपचारिकता के बाद मैंने उन्हें अपनी कलागत अभिरुचि से अवगत कराया और 'पहाड़ी चित्रकला' नामक अपनी पुस्तक दिखाई। उन्होंने पुस्तक का एक-एक चित्र देखा और उस पर बातचीत की। चित्र कहां है, किस शैली का है, किस वर्ष का है, क्या विषय है—इन सब नुक्तों पर उनसे सहज, सार्थक सम्वाद होता रहा। चित्रावली में कुल्लू शैली की एक कृति थी। उनका मत था कि यह चित्र मण्डी शैली का हो सकता है। मैंने उस सम्भावना से इनकार तो नहीं किया लेकिन बताया कि चित्र में व्यक्ति विशेष की टोपी की बनावट के आधार पर उसे कुल्लू शैली

tharahkardu.in

के अन्तर्गत रखना अधिक उपयुक्त समझा। तब उन्होंने कहा कि आप ठीक कहते हैं। हर चित्र में उनकी समान रुचि तो नहीं थी लेकिन सभी चित्रों में न्यूनाधिक लगाव व तन्मयता से देखते हुए यह बात निश्चित सी लगी कि उन जैसे कला-अध्येता के लिए इस कला-धरोहर की हल्की से हल्की कृति भी उपेक्षणीय नहीं है।

'पहाड़ी चित्रकला' लिखते हुए मैंने पुस्तक में उद्‌धृत अधिकांश चित्रों के काल-निर्धारण पर अधिक बल इसलिये नहीं दिया था कि यह काम पूर्ण दक्षता से करने में मैं असमर्थ था। आज असमर्थता की यह बात स्वयं ही कुछ अटपटी लगती है क्योंकि यदि मेरे अनुमान को कोई गलत भी सिद्ध करता तो उससे पुस्तक की उपादेयता में अन्तर न आता। कला-इतिहास में काल-निर्धारण पर चर्चा आवश्यक है, उसे स्वीकारना हर तरह से श्रेयस्कर है। कार्ल खाण्डेलवाला के साथ कुछ एक चित्रों के काल का जो अनुमान मैंने किंचित अनिश्चय के साथ प्रस्तुत किया था, उन्होंने उसे निश्चय से स्वीकारते हुए मेरे मनोबल को बहुत मज़बूत किया। मेरे अवचेतन में अब यह बात सहजतया समा गई थी कि किसी भी चित्र की परख काल और स्थान विशेष के सम्बन्ध में अपरिहार्य है। अब मुझे कला-लेखन के उस पक्ष का भी ख्याल आया जिसे पत्रकारिता के क्षेत्र म हम कला-समीक्षा के नाम से चालू कर काल-सम्बन्ध की बात को कई बार गौण या उपक्षेणीय समझ लेते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के इस विद्वान से हुई बातचीत से मुझे अपनी कला-अभिरुचि के प्रति एक अपूर्व मनसतोष मिला। लगा सही विद्वान वही है जो बातचीत के दौरान दूसरों में विश्वास और निष्ठा पैदा कर सके। उनकी सहृदयता ने मुझ में अपने काम के प्रति एक निष्ठा को बल दिया।

मैं तावो विहार (स्पीति वादी में स्थित) पर काम कर रहा हूं, यह भी मैंने उन्हें बतलाया। मैंने जब अपने काम के लिए निपुण निदेशन की आवश्यकता व्यक्त की तो वे खामोश रहे। लगता था बौद्ध-कला या तिब्बती-कला उनका क्षेत्र-विशेष नहीं है। उन्होंने बताया कि तावो बौद्ध-विहार पर 'आर्किआलोजिकल सर्वे आफ इण्डिया' ने एक वृत्तचित्र तैयार किया है। मुझे इस बात की कुछ जानकारी पहले से थी। मैंने पूछा—'क्या मेरे लिए उसे देख पाना सम्भव होगा।' 'हां, दिल्ली आइए।' 'क्या वे मेरे लिए प्रदर्शन की व्यवस्था कर देंगे?' इस पर उन्होंने आश्वासन दिलाया कि वैसा कुछ सम्भव है।

पुस्तक को रुचि और संलग्नता से देखने के बाद उन्होंने कहा—मुझे यह देखकर खुशी हुई कि आपने हिन्दी में कला पर काम किया है। मैंने कहा—यह पुस्तक मैं आपको भेंट स्वरूप दना चाह रहा हूं। वह प्रसन्न हुए और मुझ कहा—मैं इसे पृष्ठांकित कर दूं। मैंने हस्ताक्षर सहित पुस्तक उनके नाम भेंट कर दी। उन्होंने तत्परता से स्वीकारते हुए उसे अपने सूटकेस में सम्भाल लिया।

डा0 कार्ल खाण्डेलवाला ने हमें पहाड़ी चित्रकला की कुछ छायानुकृतियाँ दिखाईं। उन पर देवनागरी तथा टाकरी लिपि में जो आलेख थे उसे पढ़ने-समझने की किंचित

कोशिश भी हुई । डा0 उपाध्याय और मैं बाद में इस बात को लेकर चर्चा करते रहे कि हिन्दी व संस्कृत भाषाओं तथा देवनागरी व टांकरी लिपियों सम्बन्धी उनकी सीमाओं ने पहाड़ी कला पर उनकी पकड़ को ढीला नहीं किया । यदि कोई व्यक्ति लगन और निष्ठा से किसी काम को करना चाहे तो उसके लिए किसी भी अभाव व बाधा का कोई मतलब नहीं होता; इस आशय की उक्ति तो कई बार सुन चुका हूं पर आदमी कैसे अपनी सीमाओं से ऊपर उठ कर एक क्षेत्र-विशष पर एक सर्वथा मौलिक अधिकार ग्रहण कर सकता है, इसका प्रबल प्रमाण कला-जगत के अनन्य अध्येता कार्ल खाण्डेलवाला से हुई मुलाकात के दौरान मैंने जसे सहज ही पा लिया था ।

डा0 कार्ल खाण्डेलवाला के कमरे से निकल कर कुछ देर हम राष्ट्रपति निवास के रिसैप्शन में बैठे तो बातचीत का सिलसिला डा0 उपाध्याय ने रागमाला-चित्रों से शुरु किया । डा0 खाण्डेलवाला ने बताया कि कुल्लू शैली के अन्तर्गत भी रागमाला का चित्रण हुआ है । बातचीत के कुछ देर बाद जब हम मुख्य भवन से बाहर निकलने लगे तो डा0 खाण्डेलवाला ने मुझ से पूछा कि आपकी पुस्तक कब प्रकाश में आई थी? मैंने उन्हें बताया कि वह 1969 का प्रकाशन है । दुर्भाग्य से उस वक्त मैं आपके महान् ग्रंथ 'पहाड़ी मिनिएचर पेंटिंग' (अंग्रेज़ी) को नहीं देख पाया था (यद्यपि अपनी पुस्तक पर काम करते हुए मैंने डा0 खाण्डेलवाला की उक्त कृति पर समीक्षा किसी अच्छी कला-पत्रिका में पढ़ी थी) ।

गाड़ी पहुंच चुकी थी और हम उसमें बैठ गये थे । तब तक बातचीत का रुख किसी दूसरे विषय की ओर हो चुका था । डा0 खाण्डेलवाला के मन पर कभी तो शिमला का दृश्यचित्र हावी हो जाता और कभी उससे अपने को छिटकते हुए अलग कर वे हाटकोटी के अपने अपने अगले कार्यक्रम पर कुछ जानकारी इकट्ठी करना आवश्यक समझते ।

यहां इस संस्मरण को समाप्त करने से पूर्व एक बात लिख देना आवश्यक समझ रहा हूं । मैंने जब डा0 खाण्डेलवाला की पुस्तक 'पहाड़ी मिनिएचर पेंटिंग' पहली बार, हिमाचल सचिवालय के पुस्तकालय में देखी तो मेरे मन में एक अजीब सी प्रतिक्रिया हुई जिसे मैंने उपाध्याय जी से एकाधिक वार सांझा किया । यह पुस्तक पहले देख लेता तो शायद मैं अपनी पुस्तक न लिखता । तब मैं पहाड़ी चित्रकला पर किसी विशिष्ट मार्ग-निर्देशन में कुछ कार्य करने की प्रेरणा जुटाने के लिए प्रतीक्षा करता और न जाने वह प्रतीक्षा ही बनी रहती ।

[साबेर काटज
संजौली
शिमला–171006]

tharahkardu.in

अकादमी की गतिविधियाँ

महाकवि भास के छः नाटकों जिनमें दो एकांकी भी हैं, का पहाड़ी भाषा में 'छनाट' नाम से अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। अनुवाद प्रदेश के संस्कृत विद्वानों द्वारा किया गया है। 'छनाट' का प्रकाशन किया गया तथा 'संस्कृत काव्य-संकलन' (ऋतम्भरा) और 'माला़ रे मणके' (पहाड़ी काव्य-संकलन) की प्रैस कापियां तैयार की गईं।

14 सितम्बर को प्रदेश भाषा-विभाग द्वारा आयोजित 'हिन्दी दिवस' के अवसर पर सहयोग दिया गया।

5 से 7 अक्तूबर तक भाषा-विभाग, हिमाचल प्रदेश के तत्वावधान में प्रदेश संग्रहालय में आयोजित 'पुरातत्व तथा कला' गोष्ठी के अवसर पर अकादमी के अधिकारियों व कर्मचारियों ने कार्यक्रम में सहयोग दिया।

अकादमी के प्रकाशन

1. **पहाड़ी लोक रामायण**—प्रदेश के विभिन्न जनपदों में प्रचलित राम-कथा के लोक-साहित्यिक रूपों का संकलन।
—मूल्य 12 रु0 मात्र।

2. **छनाट**—संस्कृत के महाकवि भास के छः नाटकों, एकांकियों का पहाड़ी भाषा में अनुवाद।
—मूल्य 12 रु0 मात्र।

3. **ऋतम्भरा**—प्रदेश के संस्कृत कवियों की कविताओं का संकलन।
—मूल्य 6 रु0 मात्र।

4. **माला़ रे मणके**—प्रदेश के पहाड़ी कवियों की कविताओं का संकलन।
—मूल्य 6 रु0 मात्र।

हिमाचल प्रदेश के मन्दिरों की शैली तथा सूची

–कु० त्रिभुवन रेखा राठौड़

सोमसी के अप्रैल, 1975 अंक में कु० भुवनेश्वरी राठौड़ द्वारा संकलित 'हिमाचल प्रदेश की वास्तु-कला की वाङ्मय-सूची' प्रकाशित हुई। सामान्यत: यह सूची इस भू-खण्ड में पाये जाने वाले मन्दिरों की स्थापत्य कला पर आधारित है। प्रस्तुत लेख में मैंने इस क्षेत्र के विभिन्न प्रकार के मन्दिरों का वर्गीकरण तथा मुख्य मन्दिरों की एक सूची तैयार करने का प्रयास किया है।

पुराणों में यह क्षेत्र देवभूमि के नाम से विख्यात है। इस पुण्य क्षेत्र में देवी देवताओं के कोई पांच हज़ार के लगभग विभिन्न प्रकार के मन्दिर हैं। वास्तु-शैली की दृष्टि से ये मन्दिर तीन प्रकार के हैं। प्रथम स्थानीय शैली है, जिसे हम 'खश शैली' भी कह सकते हैं। इस शैली के मन्दिर हिमाचल प्रदेश के मध्य पर्वतीय क्षेत्र में चम्बा से लेकर सिरमौर तक पाए जाते हैं। द्वितीय है—भारतीय आर्य शैली। ये मन्दिर शिवालिक की पहाड़ियों तथा हिमाचल की निचली घाटियों में हैं। तृतीय शैली में आते हैं—लामाओं के बौद्ध विहार या गोम्पा। ये गोम्पा-विहार सीमावर्ती क्षेत्र किन्नौर, लाहुल और स्पीति में हैं।

सबसे पहले हम स्थानीय शैली 'खश शैली' लेते हैं। खश शैली—इस लिये कि ये मन्दिर अधिकांश खश बस्तियों में पाये जाते हैं। इन के निर्माता भी वही लोग हैं और मन्दिर उन्हीं के देवी देवताओं से सम्बन्धित हैं। ज्यादातर ये मन्दिर चम्बा, मण्डी, कुल्लू, ऊपरी शिमला की पहाड़ियों और किन्नौर में पाये जाते हैं। इन इलाकों में देवदार की लकड़ी बहुत पाई जाती है। यह लकड़ी बहुत देरपा है। इस में कीड़ा नहीं लगता और एक हज़ार वर्ष तक रह सकती है। इस लिये ये सभी मन्दिर स्थानीय लकड़ी और पत्थरों से बनाये गये हैं। बुनियाद से ये सभी मन्दिर वर्गाकार या आयताकार के होते हैं परन्तु इनके छप्पर नाना प्रकार के होते हैं जिन के आधार पर इस का वर्गीकरण किया जा सकता है।

इस प्रकार के मन्दिर भीतरी चम्बा, कुल्लू, किन्नौर और ऊपरी शिमला की पहाड़ियों में हैं।

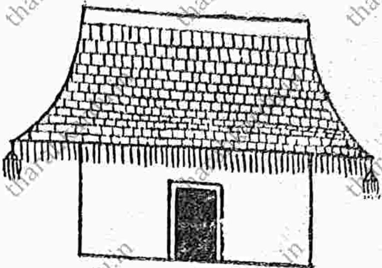

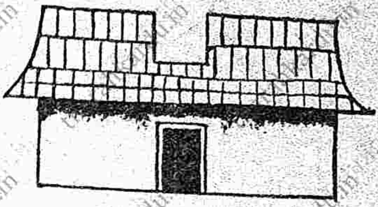

(1) **ढलवां छत्त**—ऐसे मन्दिरों में छत्त सामने ग्रौर पीछे की ग्रोर से ढलवां होते हैं ग्रौर बीच से उठता हुग्रा शिखर । इस प्रकार के मन्दिर भीतरी चम्बा, कुल्लू किन्नौर ग्रौर ऊपरी शिमला पहाड़ियों में हैं ।

(2) **सूचीस्तम्भीय (पिरौमिडी) छत्त**—इस में छत्त नीचे से चौकोर होता है ग्रौर मध्य में उठता हुग्रा ऊंचा पिरामिड। इस शैली के मन्दिर जुब्बल उपत्यका में पाये जाते हैं ।

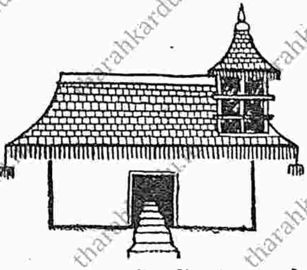

(3) **ढलवां छत्त पैगोडा संयोजन**—इस शैली के मन्दिरों में ढलवां छत्त के शिखर पर मध्य में या किनारे पर एक छोटा सा मेरु (पैगोडा) बनाया हुग्रा होता है । ऐसे मन्दिर ग्रधिकतर ऊपरी सतलुज घाटी में बनाये जाते हैं । इस लिये इसे सतलुज घाटी शैली कहना उचित रहेगा । इस सीमित लेख में सभी प्रकार के मन्दिरों की शैलियों, उन का इतिहास ग्रौर उन के पीछे बन्धी परम्पराग्रों ग्रौर किंवदन्तियों का वर्णन करना संभव नहीं ।

tharahkardu.in

इस लिये यहां पर स्थानीय शैली के मन्दिरों की वर्गीकृत सूची दी जा रही है। भारतीय-आर्य शैली तथा गोम्पा शैली का वर्णन किसी अगले लेख किया जायेगा। फिर भी सभी शैलियों का वर्णनमात्र करना असंगत नहीं होगा। चौथा प्रकार निम्नलिखित है—

(4) मेरु (पैगोडा) मन्दिर—इस प्रकार के मन्दिरों में छत्त के ऊपर छत्त होती है। सब से नीचे वाला छत्त बड़ा, फिर उस से ऊपर को छोटा और उस से ऊपर का और छोटा। सब से ऊपर का छत्त छत्री—प्रकार का गोल होता है। ये मन्दिर ज्यादातर, कुल्लू और किन्नौर में हैं।

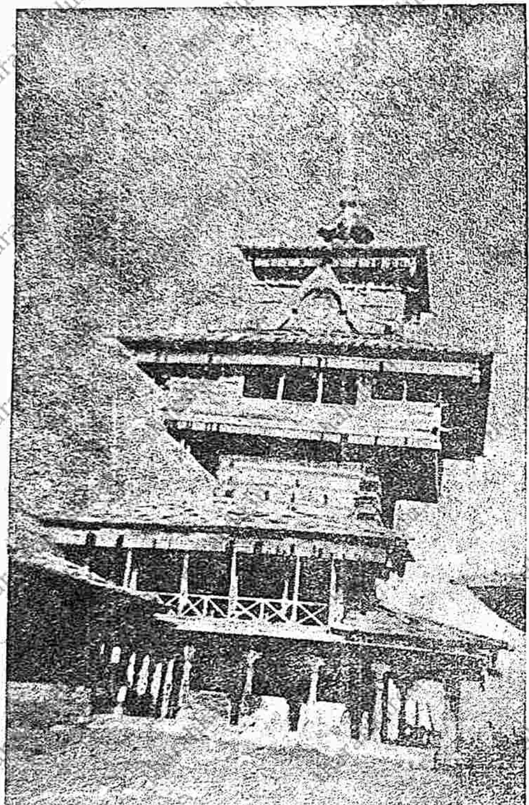

आगे मन्दिरों के नामों के साथ जो संख्याएं दी गई हैं, उनके सन्दर्भ संकेत इस प्रकार हैं—

संकेत 1. मन्दिर का नाम
2. देवता या देवी का नाम
3. स्थान
4. शैली
5. संदर्भ

1. खज्जी नाग मन्दिर
2. नाग देवता
3. खजियार-
   चम्बा
4. पट शिलाग्रों का ढलवां छत.
5. (1) Goetz, H.-Early wooden Temples of Chamba. 1955p. 71.

1. चामुंडा मन्दिर
2. चामुंडा काली
3. गांव देवी कोठी
   त0 चुराह,
   चम्बा
4. छलवां छत्त
5. (1) Chamba State Gazetteer, Part A. 1904, p. 48, 185.
   (2) Census of India, 1961: Himachal Pradesh, A village survey of Devi Kothi 1964. p. 58-59.

1. चामुंडा मन्दिर
2. काली, मिन्धल वासनी देवी
3. गांव मिन्धल
   त. पांगी (चम्बा)
4. ढलवां छत्त
5. (1) गुप्त, खे. मिन्धल जहां एक बैल से हल चलता है—हिमप्रस्थ, अप्रैल, 1966.
   पृ0 37-40
   (2) जोशी, द. मिन्धल देवी मन्दिर—हिमप्रस्थ, नवम्बर, 1971 पृ 37-40
   (3) भटनागर, उ0. चामुंडा देवी का मन्दिर—हिमप्रस्थ, जनवरी, 1965
   पृ0 14-15
   (4). Chamba State Gazetteer, Part A, 1904, p. 294.
   (5). Vogel, J.-Antiquities of Chamba State. 1911. V. 1 p 16.

1. मरकुला देवी मन्दिर

2. दुर्गा

3. उदयपुर,
चम्बा-लाहौल,
चम्बा

4. ढलवां छत्त

5. (1) गुप्त, खे. मरकुला मन्दिर—हिमप्रस्थ, जनवरी, 1964 पृ0 31-35 चित्र।

(2) वही मरकुला मन्दिर—सोमसी, जनवरी 1975, पृ0 84-7

(3) Chamba State Gazetteer, Part A. 1904. p. 47-8, 185.

(4) Goetz, H. Early Wooden Temples of Chamba, 1955 p. 90-100, plate X-XVI.

(6) Anand, M. Marg-March, 1957, p. 15-18. 2 illus.

(7) Rose, H. A. Glossary of the Tribes and Castes in the Punjab 1911. vol. I, p. 334.

1. लक्षणा देवी मन्दिर

2. दुर्गा

3. गांव भरमौर,
त0 भरमौर,
चम्बा।

4. ढलवां छत्त

5. (1) Anand, M. Marg, March 1957. p. 15-16. plate at p. 16.

(2) Chamba State Gazetteer, Part A, 1904. p. 45-46, 185, 292-93.

(3) Goetz. H. Early Wooden Temples of Chamba, 1955 p. 75-80. illus.

(4) Hutchison, J. History of Punjab Hill States. 1933. V. I p. 276.

(5) Shashi, S. Himachal 1971. p. 171—73.

(6) Vogel, J. Antiquities of Chamba State. 1911 p. 7.

(7) Census of India 1961 : Himachal Pradesh, A village survey of Brahmaur, 1964, p. 58-9.

1. शक्ति देवी मन्दिर

2. दुर्गा

3. गांव छतराड़ी,
चम्बा

4. ढलवां छत्त

5. (1) शास्त्री, भ.-वणखण्ड से छतराड़ी--हिमप्रस्थ, दिसम्बर 1969. पृ0 43-45

(2) Census of India 1961: Himachal Pradesh, A village survey of Chitrari. 1955 p. 84-49.

(3) Chamba State Gazetteer, Part A, 1904 p. 46-7, 185, 293.

(4) Goetz. H. Early Wooden Temples of Chamba 1955. p. 86-90 illus.

(5) Anand, M. ed. Marg, March, 1957. p. 18.

(6) Vogel, J. Antiquities of Chamba State. 1911. Vol. I p. 8.

(7) Rose, H. A. Glossary of the tribes and casts in the Punjab. 1911. Vol. I. p. 334.

1. आदि ब्रह्मा मन्दिर
2. ब्रह्मा
3. गांव खोखन,
   कुल्लू
4. मेरू (पैगोड़ा) मन्दिर, चार छत्त

5. (1) Chetwode, P. Temples of the Western Himalaya.—Architectural Review, February 1973 p. 136 illus.

(2) Kulu Gazetteer, 1917. p. 37-38.

1. गोसैनी मन्दिर
2. गाड़ा दुर्गा
3. गांव गुसाचनी,
   तीर्थन नदी के किनारे,
   भीतरी सराज,
   कुल्लू

5. (1) Chetwode, P. Kulu The end of the habitable world. 1972. p. 191.

(2) Chetwode, P. Temple architecture in Kulu—J.R.S.A. October, 1968 p. 935, illus No. 8.

(3) रन्धावा, एम.-कुल्लू के लोक-गीत, 1955 पृ0 42-43

1. कोट मन्दिर
2. स्थानीय देवता,
3. गांव कोट बाहरी सराज,
   कुल्लू
4. ढलवां छत्त
5. (1) Gore, F. Light and Shade at Hill life. 1895. Photo. of temple at p. 30

1. चुगेरसा देवी मन्दिर
2. दुर्गा

3. गांव चुंग,
पार्वती घाटी,
कुल्लू
4. ढलवें छत्त का चार मंजिला मन्दिर

5. (1) Chetwode, P. Temples of Western Himalaya—Architectural Review, February, 1973. p. 134-5. illus.
(2) Calvert. Vazeeri Rupi the Silvery Country of the Vazeers in Kulu, 1873. Col. plate.

3. रन्धावा, एम0 कुल्लू के लोक गीत 1955. पृ0 40-42

(1) जामलू देवता मन्दिर
(2) जामलू
(3) गांव मलाणा,
कुल्लू
(4) ढलवां छत्त

5. (1) Chetwode, P. Kulu: the end of the habitable World. 1972. p. 106-7, 125.
(2) Gore, F. Light and Shade of Hill life. 1895. Photo at p. 88.
(3) Kulu Gazetteer, 1917, p. 69-73.
(4) Punjab, Govt. Kulu: the happy Valley, 1956, p. 67-69.
(5) Randhawa, M. Travels in Western Himalaya. 1974. p. 189.

(5) रन्धावा, एम0 कुल्लू के लोक गीत, 1955, पृ0 31–38

1. धनेश्वरी देवी मन्दिर
2. दुर्गा
3. गांव नौथर-धनाह, बाहरी सराज, कुल्लू
4. ढलवा छत्त और उसके ऊपर एक छोटा पैगोडा छत्त

5. (1) Chetwode, P. Temple in Western Himalaya. Architectural Review, February, 1973. p. 138, illus.

1. त्रियुगी नारायण मन्दिर
2. विष्णु
3. गांव दयार, बजौरा के पास, कुल्लू
4. मेरू (पैगोडा) शैली

5. (1) Harcourt, Himalayan District of Kooloo, Lahaul and Spiti. 1871. p.
(2) Kulu Gazetteer, 1917. p. 37-38.

1. त्रिपुरा सुन्दरी मन्दिर
2. दुर्गा
3. नगर कुल्लू
4. तीन छत्तों वाला मेरू (पैगोडा) मन्दिर

सोमसी

5. (1) Chetwode, P. Kulu the end of the habitable world. 1972. p. 102-3, 105, 112-13, 123-26, photo at p. 127.

(2) Chetwode, P. Temple architecture in Kulu—J. R.S.A. October, 1968. p. 940-41. photo at p. 941.

(3) Kulu Gazetteer 1917, p. 37-38.

1. बेल मन्दिर
2. ....
3. गांव बेल, बाहरी सराज, कुल्लू
4. तीन पुरी का पैगोडा मन्दिर

5. (1) Chetwode, P. Temple Architecture in Kulu—J. R. S. A. October, 1968 p. 941. illus.

[सूची स्तम्भीय (पिरामिडी प्रकार) विवरण के लिए पृ0 79 की क्रम संख्या 2 देखें]

1. बिजली महादेव मन्दिर
2. शिव
3. मालथन देरा
कुल्लू
4. ढलवां छत्त

5. (1) Chet wode, P. Kulu: The end of the habitable World. 1972. p. 106-7, 125

(2) Chet wode, P. Temple Architecture in Kulu, J. R. S. A. October, 1968. p 932, illus.

(3) Harcourt, A. Himalayan District of Kooloo, Lahaul and Spiti. 1871. p 61

(4) रन्धावा, एम0, कुल्लू के लोक गीत, 1955, पृ0 26–28

1. बुढा महादेव मन्दिर (अ)
मीथर देहरा भण्डार (आ)
2. शिव

3. गांव नीथर, देरा सतलुज घाटी,
कुल्लू ।

4. ढलवें छत्त का चार मंजिला मन्दिर।

5. (1) Chetwode, P. Temples of the Western Himalaya architectural Review, February 1973, p 134, illus

(2) Chet wode, P. Temples in Western Himalaya Country Life (London) January 11, 1973. 92, illus

(3) Rose, H. comp. Glossary of the Tribes and Castes in the Punjab, 1911 v. i, p. 274.

[मेरु पैगोडा प्रकार]
(विवरण के लिए पृ० 80
क्रम संख्या 4 देखें)

1. भेखली देवी मन्दिर
2. दुर्गा
3. कुल्लू नगर से दो मील दूर
4. ढलवां छत्त ।

1. भूटानी देवी मन्दिर
2. दुर्गा
3. नगर के निकट,
कुल्लू
4. ढलवां छत्त

5. (1) Punjab, Govt. Kulu: the happy valley. 1956. p. 62,

1. झीरी मन्दिर,
2. ....
3. नगर के निकट, कुल्लू
4. ढलवां छत्त

सोमसी

5 (1) Chet wode, P — Kulu: the end of the habitable world. 1972. p. 124

(2) Punjab, Govt.-Kulu. the happy valley. 1956. p. 61

1. मनु मन्दिर
2. मनु ऋषि
3. गांव गौनशार,
   कुल्लू
4. पांच छत्तों वाला पैगोडा मन्दिर

5. (1) Chet wode, P. — Temples in Western Himalaya—Country Life (London) January 11, 1973. p. 82, plate 8.

(2) Randhawa, M. — Travels in Western Himalaya, 1974 p. 189.

1. मुरली धर मन्दिर
2. कृष्ण (वैष्णव)
3. चैनी, बंजार से तीन मील,
   कुल्लू
4. ढलवां छत्त का पांच मंज़िला मन्दिर

5. (1) Chet wode, P. — Temples of Western Himalaya—Architectural Review, February, 1973. p. 133-illus.

(2) Chet wode, P. — Temples in Western Himalaya—Country Life (London), January 11, 1973 p. 81, Col. plate.

(3) Rose, H.A. — Glossary of the Tribes and Castes in the Punjab, 1911. Vol. I p. 388

1. सराहन मन्दिर भण्डार
2. ....
3. गांव सराहन बाहरी सराहन,
   कुल्लू
4. ढलवां छत्त

5. (1) Chet wode, P. — Kulu: the end of the habitable world. 1972 photo p. 126/2.

(2) Chet wode, P. — Temples of the Western Himalaya—Architectural Review, February, 1973. p. 133, illus.

(3) Chetwode, P. — Temple Architecture in Kulu—J. R. S. A. October, 1968. p. 93. illus.

1. परशु राम मन्दिर
2. परशु राम
3. गांव निर्मण्ड बाहरी सराज,
   कुल्लू
4. ढलवां छत्त

5. (1) Chetwode, P. Temples in Western Himalaya—Country Life (London), January 11, 1973, p. 81, Col. plate.
(2) Harcourt, A. Himalayan District of Kooloo, Lahaul and Spiti 1871, P. 96—98.

1. कैलशन देवी मन्दिर
2. दुर्गा
3. गांव मुशारा नगर के निकट कुल्लू

5. Punjab Govt. Kulu : The Happy Valley. 1956 p. 61

1. विष्णु मन्दिर
2. विष्णु
3. गांव साजला, जगतसुख मार्ग पर, कुल्लू।
4. बंगले की प्रकार का ढलवां छत्त का मन्दिर।

5. (1) Chet wode, P. Kulu: the end of the habitable world 1972. p. 166.

1. कशियोल मन्दिर
2. ....
3. गांव कशियोल, सतलुज घाटी, (रामपुर के दूसरी ओर) कुल्लू।
4. पैगोडा शैली छत्त का नीचे का भाग चौकोर और ऊपर के दो भाग गोल।

5. (1) Chet wode, P. Kulu: the end of the habitable World 1972. p. 209.

1. सन्ध्या देवी मन्दिर
2. दुर्गा
3. जगतसुख, कुल्लू
4. ढलवां छत्त।

5. (1) Chet wode, P. Kulu: the end of the habitable world. 1972. p. 167—68. illus. at p. 166, 168.
(2) Harcourt, A. Himalayan District of Kulooloo Lahaul and Spiti 1871,
(3) Shastri (Dr.) H. Historical document of Kulu—A. S. I. R. 1907—08. p. 268—76.

1. हिडिम्बा मन्दिर
2. हिरमा देवी
3. ढुंगरी, मनाली के निकट, कुल्लू
4. चार छत्तों वाला पैगोडा।
5. शर्मा, अ, हिडम्बा देवी का मन्दिर—वीर प्रताप 5 मई, 1975 पृ0 2 चित्र।

(2) (1) Chet wode, P. Kulu: the end of the habitable world. 1972. p. 106-7.
(3) (1) Chet wode, P. Temple architecture in Kulu J.R.S.A. Oct. 1968 p. 937.

(4) Gupta — Hadamba temple of Dhungri H. P. Vishveshvarananda Inst. Journal, 1968, p. 121-4 Punjab Govt., Kulu the happy valley 1956.

(6) Harcourt, A. — Himalayan District of Kulu, Lahaul and Spiti 1871. p. 98.

(7) Randhawa, M. — Travels in western Himalaya. 1974. p. 172-88 plate No. 55.

Kulu Gazetteer, 1971. p. 37-38

(8) रन्धावा, एम० — कुल्लू के लोक गीत, 1955, पृ० 23–26।

1. अम्बिका देवी मन्दिर
2. दुर्गा
3. गांव निर्मण्ड बाहरी सराज, कुल्लू
4. ढलवां छत्त

5. (1) Francke, A. — Antiquitis of Indian Tibet 1913, VI p. 5 photo on plate II flg. 'a'

(2) Harcourt, A. — Himalayan District of Kooloo, Lahaul and Spiti, 1871, p. 98

1. शृंग ऋषि मन्दिर
2. शृंग ऋषि।
3. सराहन गांव के निकट बाहरी सराज में बांशलियू घाटी के पास, कुल्लू
4. ढलवां छत्त

5. (1) Chet wode, P. — Kulu the end of the habitable world 1972. p. 126 plate No. 3

1. शृंग ऋषि मन्दिर
2. शृंग ऋषि
3. सीकारू, और बिजयपुर गांव, चेहनी।
4 ....

5. Rose, H. A. — Glossary of the tribes and Casts in the Punjab 1911. Vol. I. p. 422, 423, 424.

1. कपिल मुनि मन्दिर
2. कपिल मुनि
3. कलात, सुलतानपुर के पास कुल्लू
4. ....

1. मारकण्डा ऋषि मन्दिर
2. मारकण्डा ऋषि
3. मंगलौर
कुल्लू
4. ....

5. Rose, H. A. Glossary of the tribes and Castes in the Punjab 1911. Vol. I p. 422.

1. पूनी मन्दिर
2. जामलू देवा से सम्बन्धित
3. हामटा घाटी के आंचल में, कुल्लू ।
4. ....

1. नरसिंह देव मन्दिर
2. नरसिंह (विष्णु)
3. नग्गर, कुल्लू
4. ढलवां छत्त

5. Chet wode,P. Kulu: the end of the Habitable world. 1972. p. 122.

1. पाचला देवी मन्दिर
2. दुर्गा
3. देवरी (श्रीगढ़),
सराज, कुल्लू
4. ढलवां छत्त

5. Rose, H. A. Glossary of the tribes and Castes in the Punjab. 1911. vol I, p. 340

1. कयुम्भा देवी मन्दिर
2. दुर्गा
3. खेखसू
सराज, कुल्लू ।
4. ढलवां छत

5. Rose, H.A. Glassory of the tribes and Castes in the Punjab 1911 vol. I. p. 339.

1. वेरी देवी मन्दिर
2. दुर्गा
3. वेरी फंटी
कुल्लू ।
4. ढलवां छत्त

1. फंगनी देवी मन्दिर
2. दुर्गा,
3. त्योंन देहरा,
   कोठी मानगढ़, कुल्लू
4. ....

1. करचाली नरायण मन्दिर
2. विष्णू
3. कलून देहरा,
   कुल्लू ।
4. ....

1. हरंगु नारायण मन्दिर
2. विष्णू
3. देहरा गाहार,
   . . . .
   कुल्ल ।
4. ....

1. नारुमनी देवता मन्दिर
2. विष्णू
3. कोठी कण्डी
   कुल्लू
4. ....

1. शामशेरी महादेव मन्दिर
2. शिव
3. गांव शमशर, बाहरी सराज, कुल्लू
4. ....

5. Rose, H.A. Glossary of the tribes and Castes in the Punjab, 1911. vol. I, p. 273

1. बीम महादेव मन्दिर
2. शिव
3. गांव बीन, बाहरी सराज, कुल्लू ।
4. ....

5. Rose, H. A. Glossary of the tribes and Castes in the Punjab, 1911 Vol. I. P 273

tharahkardu.in

1. बशेशर महादेव मन्दिर
2. शिव
3. गांव निर्मण्ड बाहरी सराज, कुल्लू ।
4. ढलवां छत्त ।

5. Rose, H. A. Glossary of the Tribes and Castes in the Punjab, 1911. Vol. I. P. 274.

5. Rose, H. A. Glossary. P. 274.

1. मूरड़ू महादेव मन्दिर
2. शिव
3. फाटी चनैल, बाहरी सराज, कुल्लू
4. ढलवा छत्त ।

5. Rose, H. A. Glossary p. 274

1. बनाह महादेव मन्दिर
2. शिव
3. ....

बाहरी सराज
कुल्लू
4. पैगोडा शैली

5. Rose H. A. Glossary p.

1. ईश्वर महादेव मन्दिर
2. शिव
3. गांव सांगरी बाहरी सराज,
4. ढलवा छत्त

5. Rose. Glossary, P. 273

1. आदि पुर्ख मन्दिर
2. ....
3. गांव टेहरी दुलची दर्रा, मण्डी ।
4. ....

5. Mandi State Gazetteer, Part A. 1920. p.

1. कामरू नाग मन्दिर
2. नाग देवता
3. गांव छतरी . . त0 चचोट, मण्डी
4. ढलवां छत,

5 (1) Mandi State Gazetteer, Part, A, 1920, P. 120.

1. कामाक्ष्य देवी मन्दिर
2. दुर्गा
3. गांव काऊ,
त0 करसोग, (माहुनाग से तीन मील दूर मण्डी।)
4. पैगोड़ा शैली--चार छत्तों वाला मन्दिर।

1. गौरी शंकर मन्दिर
2. शिव
3. गांव ममेल त0 करसोग, मण्डी
4. पैगोड़ा मन्दिर

5. Census of India 1961: Himachal Pradesh, A village Survey of Pangana. 1967. Photo of the Temple on plate 8.

1. नारायण मन्दिर
2. नाग देवता
3. हुरंग, मातू दर्रा के निकट, मण्डी।
4. पहाड़ी शैली दिवारों पर नाग की मूतियां अंकित

5. Mandi State Gazetteer, 1920, p. 124.

1. मगरू महादेव मन्दिर
2. शिव
3. गांव छतरी, त0 चचोट, मण्डी
4. ढलवां छत भीतियों पर रामायण और महाभारत के दृश्य अंकित।

5. Man Mohan History of Mandi State, 1930. p. 12

1. माहू नाग मन्दिर।
2. नाग देवता
3. गांव माह, त0 करसोग, मण्डी।
4. ढलवां छत।

5. Randhawa, M. Travels in the western Himalaya. 1974. p. 160 photo fig. 42, 43, 444, 46.

1. प्राशर मन्दिर
2. प्राशर ऋषि
3. प्राशर सरोवर के किनारे,
मण्डी
4. तीन छत्तों वाला पैगोडा मन्दिर।

5. (1) गौत्तम द0 पराशर झील--हिमप्रस्थ, फरवरी 1970, पृ0 22-34।

(2) Chet wode, P. Temples of western Himalaya-Arch. Review February 1973. p. 137, illus.

(3) Chet wode, P. Temples in western Himalaya-Country life (London) January, 11, 1973. P. 81 col. plate

(4) Mandi State Gazetteer, 1920 p. 120,205 photo at) .26.

(5) Man Mohan History of Mandi State, 1930, p. 12, 21.

(6) Rahdhawa, M. Travels in western Himalaya. 1974. p.103

1. आठ भूजा देवी मन्दिर
2. दुर्गा
3. गांव धरेच, (फागू के निकट) त0 ठियोग, शिमला।
4. ढलवां छत्त।

5. Rose, H. A. Glossary of the Tribes and Castes in the Punjab, 1911, p. 36162

1. कोगारा मन्दिर
2. ....
3. गांव कोगारा चूड़ चान्दनी के निकट......
4. ढलवां छत्त।

(1) White, F 5. Views in India, chiefly among the Himalaya mountains. 1838 plate at p. 70.

1. खाण्डू गांव मन्दिर
2. ....
3. गांव खाण्डू चूड़ चान्दी की ढलवान पर
4. ढलवा छत्त।

5 White, F Views in India Cheifly Among the Himalaya mountains, 1838. plate p. 67.

1. दुर्गा मन्दिर
2. दुर्गा
3. गांव हाटकोटी, त0 जुब्बल, शिमला।
4. सूची स्तम्भीय (पिरॅमिड) छत्त।

5. (1) गोवर्धन सिंह जुब्बल का ऐतिहासिक नगर हाटकोटी--हिमप्रस्थ फरवरी, 1963, पृ0 10-14

(2) भुवनेश्वरी हिन्दु संस्कृति तथा कला का कन्द्र हाटकोटी हिमालय कल्प-द्रुम--वर्ष 1, अंक 4 पृ0 81-5.

(3) Fraser, J. Journal of a tour in the snowy ranges of Himala mountatains 1820, p. 165

(4) Goverdhan Singh Hatkoti-Himachal Times Annual 1966, p. 21-23.

(5) Rose, H.A. Glassary of the Tribes and Castes in the Punjab 1911, vol. I p. 337-8, 405.

(6) Simla Hill State Gazettee, Part A, 1910 d. p. 49

(7) Simla District Gazetteer, Part A 1910, P. 4.

1. जनोग मन्दिर
2. वांठिया देवता
3. गांव जनोग, त0 ठियोग, शिमला
4. ढलवां मन्दिर ।

5. Gore, F. Light and shade of Hill life 1895. p. 10-11 photo of temple.

1. डूम देवता मन्दिर
2. डूम
3. गांव शरमला, त0 कुमारसेन, शिमला।
4. ढलवा छत्त ।

5. Rose, H.A. Glossary of the Tribes and Castes in the Punjab 1911, p 451-3.

1. डूम देवता मन्दिर
2. डूम
3. गांव गठाम, त0 कुमार सेन, शिमला।
4. ढलवां छत्त ।

1. नाग नाली देवता मन्दिर
2. नाग देवता
3. गांव जाली, पून्दर, त0 चौपाल, शिमला।
4. ढलवां छत्त।

1. बीजट देवता मन्दिर
2. बीजट (शैव देवता)
3. गांव जोड़ना, त0 चौपाल, शिमला
4. ढलवें छत्त का ऊंचा मन्दिर

5. Rose, H.A. Glossary of the Tribes and Castes in the Punjab, 1911 vol. I p. 298.

1. बीजट देवता मन्दिर
2. बीजट (शैव देवता)
3. गांव वान्दल, त0 चौपाल, शिमला
4. ढलवें छत्त का ऊंचा मन्दिर

5. Rose, H.A. glossary. p. 299-300.

1. विजय देवी मन्दिर
2. दुर्गा
3. गांव बटरोली

4. ढलवें छत्त का सात मंजिल ऊंचा मन्दिर

1. भीमा काली मन्दिर
2. काली दुर्गा
3. सराहन, रामपुर बुशहर, शिमला
4. पैगोडा शैली का भव्य मन्दिर

5.(1) जसटा, ह. भीमा काली मन्दिर--महासू--हिमप्रस्थ, फरवरी, 1966, पृ0 30-31
(2) पनवार, च. भीमा काली मन्दिर--हिमप्रस्थ मार्च, 1956 पृ0 6—7 ।
(3) Anad, M. Marg, Himachal Heritage. March 1970 plate at p. 26
(4) French, J. Himalayan Art. 1931. p. 96.
(5) Francks,A. Antiquities of Indian Tibet. 1913 vol. I p. 8 plate V
(6) Sampson,w. Architecture in the Himalaya. 1883 p. 66, sketch
(7) Simla Hill states Gazeetter, Part A. 1910 p.
(8) Simla District Gazetter, Part A. 1910 p.
(9) Van Darsteen Four months camping in the Himalaya. 1929 p. and plates. 109, 125.

1. बखोग मन्दिर
2. लौगू (स्थानीय देवता)
3. गांव बखोग, त0 ठियोग, शिमला ।
4. ढलवां छत्त ।

5. Rose. Glossary P. 362.

1. पीढ़ी देवी मन्दिर
2. दुर्गा
3. पुराना जुब्बल, त0 जुब्बल, शिमला
4. ढलवां छत्त का सात मंज़िला मन्दिर

1. बनाड़ मन्दिर
2. बनाड़ देवता (स्थानीय देवता)
3. गांव मान्दल (शिराचली) त0 जुब्बल, शिमला
4. पैगोडा शैली ।

1. बनाड़ शाड़ी मन्दिर
2. बनाड़ (स्थानीय देवता)
3. गांव शाड़ी, त0 जुब्बल, शिमला
4. ढलवां छत्त कई मंजिला मन्दिर ।

1. बीजट देवता मन्दिर
2. बीजट (शिव से सम्बन्धित देवता)
3. गांव सराहां, त0 चौपाल, शिमला
4. ढलवां छत्त के कई मंजिले दो मन्दिर

(5) (1) Census of India 1961. A Village survey of chaupal. 1971. photo on p. 88-9.

(2) Census of India 1961: Himachal Pradesh, Housing and Establish-ment. 1965 Photo of Sarahan temple on plate 32.

(3) Rose, H. A. Glossary of the Tribes and Castes in the Punjab 1911 Vol. I. p. 299

1. महासू मन्दिर
2. महासू देवता (महाशिव)
3. गांव गीजाड़ी, त0 ठियोग, शिमला
4. ढलवां छत्त

5. Census of India 1961: Himachal Pradesh, A village Survey of Gijari 1964. photo of the temple on the Cover.

1. माननेश्वर मन्दिर
2. नाग देवता
3. गांव मानन शिलारू के निकट त0 कुमारसेन, शिमला।
4. ढलवें छत्त पर छोटा सा पैगोड़ा।

5. (1) Fraser, J. Journal of a Tour in the Himala mountain in 1820-p. 195-96. col. drawing

(2) Rose, H. A. Glossary of the tribes and Castes in the Punjab 1911. Vol. I p. 460

1. पांडव मन्दिर
2. पांडव
3. गांव मसली, त0 रोहड़ू, शिमला
4. ढलवां छत्त

1. नारायण देवता मन्दिर
2. स्थानीय देवता
3. गांव जावल, त0 रोहड़ू, शिमला
4. ढलवां छत्त

1. शिकड़ देवता मन्दिर
2. स्थानीय देवता
3. रोहड़ू नगर शिमला।
4. ढलवां छत्त

1. शिरगुल देवता मन्दिर
2. शिरगुल (शिव)
3. चौपाल (नगर) शिमला
4. ढलवां छत्त

5. Census of India, 1961: Himachal Pradesh, A village survey of Chaupal. 1971 p. 69 Photo of the temple on the covers.

1. शिव मन्दिर
2. शिव
3. गांव हाटकोटी, त0 जुब्बल, शिमला
4. सूचीस्तम्भीय (पिरैमिड) मन्दिर

5. (1) गोवर्धन सिंह जुब्बल का ऐतिहासिक नगर हाटकोटी--हिमप्रस्थ, फरवरी, 1963, पृ0 10-14।

(2) भुवनेश्वरी हिन्दु संस्कृति तथा कला का केन्द्र-हाटकोटी हिमालय कल्पद्रुम वर्ष 1, अंक 4, पृ0 81--5

1. दुर्गा मन्दिर
2. दुर्गा
3. गांव क्यारी, त0 कोटखाई, शिमला
4. ढलवां छत्त के कई मंज़िले ऊंचे चार मन्दिर

5. Census of India, 1961: Himachal Pradesh, Housing and Establishment 1965, photo on plate 31 base.

1. शिरगुल देवता मन्दिर
2. शिरगल (शिव)
3. गांव सनाल
सिरमौर
4. ढलवें छत्त का तीन पूरी का मन्दिर

5. Rose, H. A. Glossary of the Tribes and Castes in the Punjab, 1911. Vol. I. p. 294.

1. कोट ईश्वर महादेव
2. शिव
3. गांव मढ़ोल, त0 कुमारसेन, शिमला
4. ढलवां छत्त

5. Rose, H. A. Glossary. P. 276. 77

1. गीता मन्दिर
2. ....
3. बड़ोबाग, कोटगढ़, शिमला।
4. पगोडा शैली-नीचे का छत्त चौकोर और ऊपर का गोल।

5. (1) Census of India,, 1961, Himachal Pradesh, A village Survey of Shathla. N.D. Plate 9.

(2) Illustrated weekly of India 13 sept. 1970, photo on P. 9.

(3) Span, January, 1961 Col. Photo at P. 26.

1. चतुर मुख देवता मन्दिर
2. . . . .
3. गांव मेलांन,
   त0 कुमारसेन,
   शिमला
4. ढलवां छत्त

5. (1) Census of India, 1961 : Himachal Pradesh: A village survey of Shathla, N.D. P. 39

(2) Rose, H. Glossary P. 460. 62

1. मात्री देवी मन्दिर
2. दुर्गा
3. गांव कत्रेड़ी,
   त0 कुमारसेन,
   शिमला
4. ढलवां छत्त

1. चंडिका देवी मन्दिर
2. दुर्गा
3. गांव कोठी (कोष्टाम्पी),
   किन्नौर
4. लवां छत्त

5. Census of India, 1961: Himachal Pradesh, A Village Survey of Kothi 1963. P. 50-56 illus.

1. कोठी देवी भण्डार
2. भण्डार
3. गांव कोठी,
   किन्नौर
4. ढलवें छत्त पर मध्य में एक छोटा पैगोड़ा

1. उषा (उखा) देवी मन्दिर
2. दुर्गा
3. गांव निचार,
   किन्नौर
4. पैगोडा शैली मन्दिर

5. (1) Census of India, 1961 : Himachal Pradesh: A village survey of Nachar, 1966. p. 40-41 Photo of the temple on plate 2, 3, and 4.

(2) Simla Hill states Gazetteer, Part A, 1910 p.

1. दुर्गा मन्दिर
2. दुर्गा
3. गांव तरण्डा,
   त0 निचार,
   किन्नौर
4. ढलवां छत्त

1. डबला देवता मन्दिर,
2. ....
3. गांव कानम,
   किन्नौर
4. पैगोडा शैली

5. Census of India, 1961 : Himachal Pradesh, A Village survey of Kanum. 1966. p. 64 photo of the temple on plate 12.

1. मन्दिर तथा धर्मशाला
2. नरेनैस
3. गांव चीनी,
   किन्नौर
4. ढलवां छत

5. (1) Sampson, W. Architeture in the Himalaya, 1883 sketch 1883. sketch on plate 86.

(2) हिमप्रस्थ-मन्दिर का चित्र मुख पृष्ट पर प्रकाशित हुग्रा ।

1. महेश्वर मन्दिर (देय्रोगलंग कोठी)
2. शिव
3. गांव चंगाव,
   त0 निचार
   किन्नौर
4. पैगोडा शैली

5. (1) Ferguson, J. History of Indian and Estern Architeture. (Rpt. 1967) vol. p. 281 sketch 161.

(2) Simpson, w Architecture in the Himalaya 1883, fig. 91

(3) Simla Hill states Gazetteer : Bashahar State 1910 p. XII.

1. महेश्वर मन्दिर
2. शिव
3. गांव कटगांव, परगना भावा, किन्नौर
4. पैगोडा
5. Simla Hill states Gazetteer : Bashahar State 1910, p. XIII.

1. माथी देवी मन्दिर
2. माथी
3. गांव छितकुल, बासपा घाटी, किन्नौर
4. ....
5. Palis, Marco Peaks and Lamas, p. 57

1. महेश्वर मन्दिर
2. शिव
3. गांव सूंगरा, निचार सब-डिविज़न, किन्नौर
4. पैगोडा
5. (1) Census of India, 1961: Himachal Pradesh. Housing and establishments. 1965. photo of the temple on plate 40.
(2) Chanderverker Hill temple architecture 32 and Indian Road Congress Simla 1969, Souenir, Photo at p. 73.
(3) Francke. A. Antiquities of Indian Tibet 1913 vol. I plate VI A.&.B
(4) Simla Hill states Gazetteer : Basahar State: 1910 p. XXIV.

1. नागस मन्दिर
2. नागस (स्थानीय) देवता
3. गांव सांगला,
किन्नौर
4. . . . .
5. Census of India, 1961 : Himachal Pradesh, Fairs and Festivals 1967, photo on plate 2 between p. 158-59.

1. बद्रीनारायण मन्दिर
2. विष्णु
3. गांव कामरू, त० सांगला, किन्नौर
4. ढलवां छत्त पर एक छोटा पैगोडा

समीक्षा

पुस्तक का नाम .. पहाड़ी लोक रामायण
मुख्य सम्पादक .. श्री लाल चन्द प्रार्थी
प्रकाशक .. हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी, शिमला।
पृष्ठ .. 256
मूल्य .. 12 रुपये मात्र।

'शोक : श्लोकत्वमागत' :

आदिकवि बाल्मीकि ने एक निरीह क्रौंच को एक नृशंस व्यक्ति के घातक बाण का शिकार होते देखा ही था कि अकस्मात् उनके मुख से ये शब्द निकल पड़े--

"मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शास्वती समाः।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥"

ये शब्द निकले और निकले क्या, कि कवितावद्ध शब्दौघ का एक पारावार वह निकला भावोद्रेक से। परिणाम था आदिकवि की रामायण वह रामायण जिसका प्रभाव दूरगामी था, जिसको आधार बनाकर कविपुंगव गोस्वामी तुलसी दास ने भी अपनी अन्यतम कृति 'रामचरितमानस' का प्रणयन किया 'रामायण' और 'मानस' हमारी राष्ट्रीय थाती हैं। मानस-चतुःशती के अवसर पर हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी ने, 'पहाड़ी लोक रामायण' नामक ग्रन्थ निकालकर बड़ा सराहनीय कार्य किया है।

जैसा कि 'पहाड़ी-लोक-रामायण' में दर्शाया गया है रामायण का हमारे जीवन के विविध अंगों पर अक्षुण्ण प्रभाव पड़ा है। अनेक हिमाचली नामों, महावरों, कहावतों, ग्राम-नामों, अथच 'लोकगीतों (घोड़ी, सुहाग आदि) पर रामायण का अमिट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। हिमाचल के राम-नवमी, दशहरा, दीपावली आदि मेले रामायण की याद दिलाते हैं। अधिकांश हिमाचली सुख-दुःख में राम-नाम का जाप करते हैं।

पहाड़ी लोक-रामायण तीन भागों में विभक्त दिखाई देता है। प्रथम भाग में हिमाचल के अनेकानेक भागों में प्रचलित राम कथा के रूप तथा उसके प्रभाव का विशद वर्णन-समालोचन है। इसमें हमारे प्रदेश के सभी ज़िलों में श्रव्य रघुनाथगाथा के गद्य तथा गेय दोनों रूपों का विवेचन समाविष्ट है। गेय रूप के कविता तथा गीत दोनों उपरूपों का उल्लेख किया गया है। दूसरे भाग में राम-कथा के कुछ अंशों के पहाड़ी रूपान्तर दिए गये हैं और तीसरे भाग में रामचरितमानस पर कुछ विद्वत्तापूर्ण लेख हैं।

राम-कथा का जो रूप हिमाचल में प्रचलित है, उसमें स्थानीय पुट अवश्य है। वस्तुतः कथा-स्रोतस्विनी जैसे जैसे अग्रसर होती रही है वैसे वैसे उसको लोक कवियों अथवा कथाकारों की कल्पना उपबृहित करती रही है। इसी कारण आप जुब्बल-कोटखाई में पाण्डवों को राम के साथ रावण के विरुद्ध समरांगण में खड़े सुनेंगे और कहीं हनुमान् को राम का भानजा बना पाएंगे। उधर देखिए, कांगड़ा में राम के वनवास का सन्देश परौली की दीवार पर लिख कर लगा देने की कथा परम्परा है और किन्नौर की एक परम्परा के अनुसार 'रानी' (सीता-माता) ने सिर पर ठेपङ् (टोपी) लगाई थी तथा कमर पर गाची (मेखला) बांधी थी। यह सब अत्यन्त रोचक है।

हिमाचली राम-कथा के पात्र कई स्थानों पर मानवीय रूप में प्रस्तुत हुए हैं। उनके हाव-भाव मानव—सदृश हैं। एक वर्णन के अनुसार राम को सन्देह हुआ था कि कहीं लक्ष्मण ने ही सीता-हरण न किया हो। राम—मानव राम को सीता कहती हैं—"रामा वण विच तैं कियां जीणां!" और मृग को देख कर जानकी मानव-स्वभाव से कहती है—"इसा हरणा जो मारे राजा रामा तां बसणा मैं घर तेरे"। यह सब इसलिये कि हिमाचल में प्रचलित राम-कथा के प्रणेताओं का चिन्तन-धरातल लोकानुकूल है और उनकी कल्पना तथा भाषा को उनके सरल हृदय ने सिंचित तथा पल्लवित किया है। इस विषय का पुस्तक के विभिन्न भागों में अच्छा प्रतिपादन हुआ है।

पुस्तक का प्रथम खण्ड बढ़िया बन पाया है तथा है भी शोधपूर्ण। कुछ बातें तो अनुसन्धित्सुओं को और प्रेरित करने की सामर्थ्य रखती हैं। पहाड़ी भाषान्तर सारे अच्छे नहीं बन पाए हैं। उनमें यत्र—तत्र छन्द-साधना का अभाव अखरता है। कहीं कहीं तो छन्दोऽनुकरण मात्र है, छन्द नहीं। परन्तु अन्तिम खण्ड बहुत उच्च कोटि के लेखों से अलंकृत है।

ग्रन्थ की भाषा प्रायः सरल—प्रांजल है। पहाड़ी का प्रयोग भी प्रतिपाद्य विषय के अनुरूप है। मुद्रण सुचारु-रूपेण किया गया है, ऐसा स्पष्ट है। आवरण मनोहर, अकृत्रिम तथा अर्थवान है।

ग्रन्थ के प्रकाशन के लिए उसके लेखक, सम्पादक तथा प्रकाशक बधाई के पात्र हैं।

—कृष्ण चन्द्र शर्मा
अवर सचिव,
हिमाचल प्रदेश लोक सेवा आयोग,
शिमला-171002.

पृष्ठ भूमि–

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् कुछ सीमा तक प्रादेशिक अध्ययन हुए हैं । इस से भारत-विद्या (इण्डौलोजी) की समस्याओं का समाधान समूची भारतीयता की समग्रता को लिए हुए सामने आया है। समग्रता के लिए दो आवश्यकताएं रहती हैं, एक–प्रादेशिकता की विशिष्टताओं की समूची राष्ट्रीयता स्वीकार करें, दूसरी, समूची राष्ट्रीयता से अथवा अन्य अन्य प्रादेशिकताओं से उभर कर आने वाली विशेषताओं को प्रत्येक प्रादेशिकता और आंचलिकता समादृत करे । ये दोनों बातें गायत्री और सावित्री की तरह आवश्यक है ।

हिमाचल-कला-संस्कृति भाषा अकादमी का मुख-पत्र 'सोमसी' मुख्यतः कला-संस्कृति-भाषा विषयक हिमाचल के सम्भाव्य और वास्तव को प्रकाशित करने के लिए है । कला-संस्कृति-भाषा विषयक राष्ट्रीय और राष्ट्रवाह्य उपलब्धियों का परिचय मात्र अपने पाठकों को देते रहना भी इस का एक गौण कार्य है, क्योंकि हिमाचल के भीतर के कला, संस्कृति, भाषा विषयक वास्तव का हिमाचल से बाहर के तद्विषयक वास्तव के साथ कोई न कोई सम्बन्ध बनना राष्ट्रहित में अत्यन्त अनिवार्य है ।

प्रदेश में दो म्यूजियम हैं, स्टेट म्युजियम, शिमला और भूरि सिंह म्युजियम, चम्बा । पुरातत्त्व से सम्बन्धित कलाकृतियां और समसामयिक कलाकृतियां इन में रखी गई हैं । एक प्रकार से ये हमारे संस्कार-केन्द्र हैं । प्रदेश में स्थित बहुत से प्राचीन ऐतिहासिक स्मारकों को भारत सरकार ने अपने परिरक्षण में लिया है। प्रादेशिक महत्त्व के अन्य स्मारकों के रजिस्ट्रीकरण की एक स्कीम भारत सरकार द्वारा चलाई जा रही है । निष्पादन कलाओं के क्षेत्र में भारत सरकार ने सांस्कृतिक ट्रुपों के अन्तर्राज्य विनिमय की एक योजना चलाई है ।

सांस्कृतिक धरातल पर युवा मन के उन्नयन के लिए युवा-केन्द्र खोले गए हैं। आलेखन कला के प्रोत्साहन हेतु चित्र प्रदर्शनियों की योजनाएं हैं । भाषा और साहित्य का क्षेत्र इस से अलग धरातल पर है । भाषाओं के विकास के नाम पर भारत पर बहुत कार्य किए जाने के प्रयत्न हुए । कला और संस्कृति की अपेक्षा मानव-भाषा के साथ अधिक गहराई के साथ संवेदनात्मक स्तर पर सम्बद्ध है, अतः भाषा-विकास के कार्य मानवसमूहों के युग-बोधों और उनकी संवेदनाओं के अनुकूल किए जाने अनिवार्य हैं अन्यथा भागीरथ प्रयत्नों का भी अनुकूल फल नहीं निकलता ।

आधुनिक विज्ञान ने भाषा के स्वभाव का विश्लेषण करके उसके नए आयामों का उद्घाटन किया है । नव्य-भाषिकी का प्रमुख प्रयोजन है–भाषा को स्वनिष्ठ स्थान प्रदान करना । इस कार्य के लिए भाषा-विज्ञान, मनोविज्ञान और दर्शन-शास्त्र इन तीनों ने

सहयोग किया है। पुराने ढंग के वैयाकरणों का उद्देश्य था–क्लासीकल लेखकों के मूल पाठ की परिरक्षा। अतः उन्होंने लिखित भाषा को ही अपना आधार माना था। कथ्य-भाषा को उन्होंने हेय समझा और उसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया। नव्य-भाषिकी ने इस स्थिति को परिवर्तित किया और यह स्थापित किया कि कथ्य-भाषा प्रधान है और उसका एक छोटा सा अंश है–लिखित भाषा। जब कथ्य को दृश्य-माध्यम से व्यक्त किया जाता है तभी लिखित भाषा का प्रादुर्भाव होता है। कथ्य-भाषा सहज और प्राकृतिक है जब कि लिखितभाषा एक अर्जित कौशल है। मानव के लिए भाषा बोलना वैसा ही स्वाभाविक और सहज है जैसा उसके लिए दो पांवों पर खड़ा होना और चलना।

कथ्यभाषा जब किसी भौगोलिक इकाई में प्रशासन, शिक्षा और साहित्य में प्रयुक्त होने लगती है तो सामान्य भाषा का दर्जा प्राप्त कर लेती है परन्तु उसके साथ ही कुछ अन्य भाषाएं समाज में किन्हीं सीमित कार्यकलापों के लिए प्रयुक्त होती रहती हैं।

उपभाषाएं (डायलैक्ट्स) कहलाती हैं। सामान्य भाषा और उपभाषाओं के तंत्र में कुछ समानताएं होती हैं और कुछ विषमताएं परन्तु दोनों में एक नियमतंत्र विद्यमान रहता है और कई बार तो उपभाषा का नियमतंत्र अधिक दृढ़, अधिक नियमबद्ध और अधिक व्याकरणपूर्ण होता है, इसके विपरीत सामान्य भाषा में अधिक अनियमितताएं अधिक अपवाद और अधिक बेकायदगियां होती हैं। अतः भाषा-विज्ञान की दृष्टि से यह कहना अत्यधिक भ्रामक और गल्त है कि उपभाषा किसी सामान्य भाषा की ओर अपूर्ण सादृश्य या अनद्यतन उपगमन है। सामान्य भाषा और उपभाषा का अन्तर राज-नैतिक होता है जिस का कारण सामाजिक होता है। भाषा-विज्ञान के दृष्टिकोण से उनमें विधागत अन्तर नहीं होता है। भाषा के क्षेत्र में सभ्य-भाषा और आदिम भाषा में इस आधार पर अन्तर करना कि एक अधिक सरल होती है और दूसरी अधिक पेचीदा अथवा एक अधिक व्याकरण सम्मत है और दूसरी कम, एक सरासर भूल और गल्त-फहमी है। इस पृथ्वी पर मानव मात्र की भाषा के तंत्र में लगभग एक जैसी पेचीदगी है। मानव की भाषा के तंत्र की पेचीदगी का और उस के सांस्कृतिक विकास का कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। अतः ग्रामीणों की भाषा को नगरों की भाषा से घटिया समझना भाषा-विज्ञान के नियमानुकूल नहीं। भाषा के तीन तंत्र माने गए हैं ध्वनि, वाक्य और अर्थ, इन तीनों का तंत्रात्मक विवरण व्याकरण कहलाता है। इन तीन तंत्रों में वाक्य का एक प्रमुख स्थान है। वाक्य ही वह साधन है जिस से भाषा अपनी सर्जनात्मकता की अनन्तता को बनाए रखती है। अनवसान ही भाषिक सर्जनात्मकता का अकथ्य गुण है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी भाषा में इस सर्जनात्मकता को स्वभाव से सहज में ही प्राप्त करता है और उसकी यह शक्ति अचेतन रूप में अविमर्शी स्तर में जाग्रत रहती है। वह नया वाक्य बनाते समय व्याकरण की शरण में नहीं जाता, नए भाव की तरह नया वाक्य उसे सहज में आता है। उस की भाषा का प्रत्येक नया वाक्य उसके भाव का व्यक्त अभिप्राय-मात्र होता है। मानव के विकास के लिए उसकी भाषिक सर्जनात्मकता प्रारम्भ से ही एक अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन रहा है। किसी प्रदेश की सामान्य भाषा वहां की सहज उपभाषाओं का सहयोग जितनी सीमा तक

प्राप्त करने में सफल हो सकेगी, उतनी सीमा तक वह अपने भाषियों की सर्जनात्मकता में सहायक हो पाएगी । किसी भाषा के वाक्य सम्बन्धी विवरणों की व्याख्या निष्पादक व्याकरण में की जाती है । किसी भाषा को प्रथम भाषा के रूप में सहज ढंग से बोलने वाले व्यक्ति विभिन्न संदर्भों और स्थितियों में भिन्न प्रकार के वाक्य बोल सकते हैं । ऐसे सभी वाक्यों की सूची नहीं बनाई जा सकती । जिन खण्डों अथवा उपसमुच्चयों से वे वाक्य बनते हैं, उनके सम्बन्ध में सिद्धान्त-परिचय अवश्य प्राप्त किया जा सकता है । यह बात गणित-शास्त्र के आवृत्ति सिद्धान्त की सहायता से निष्पन्न की जा सकती है । इसके पश्चात् भाषा-संरचना के निर्णायक नियम निकाले जाते हैं । प्रत्येक भाषा की वाक्य-संरचनाएं विभिन्न होती हैं । उन संरचनाओं के आपसी सम्बन्ध को स्पष्ट करना और यह जानना कि एक प्रकार के वाक्य का दूसरे प्रकार के वाक्य में विपरिवर्तन कैसे सम्भव होता है, विपरिवर्तक व्याकरण का विषय है । भाषा-विज्ञान का यह विपरिवर्तन-विश्लेषण सिद्धांत विभिन्न भाषाओं को समझने के लिये भी प्रयुक्त हुआ है और विश्व में इसका बहुत प्रसार हुआ है । अब यह सिद्ध हो गया है कि संसार की प्रत्येक भाषा की अन्दरूनी व्यवस्था में एक निरपवाद नियमबद्धता होती है । व्याकरण के नियम बनाए नहीं जाते बल्कि कथ्य भाषा में खोजे जाते हैं ।

वाक्यसंरचना की व्याख्या करने के लिए निम्नलिखित उपसमुच्चयों का विश्लेषण आवश्यक माना गया है—

संज्ञा पदबंध, संज्ञापदबन्ध (अनुवृत),
क्रिया पदबन्ध, क्रिया पदबन्ध (अनुवृत),
क्रिया विशेषण पदबन्ध, क्रिया पूरक,
वाक्य संरचना में अन्वय प्रश्न वाक्य,
विस्मयादि बोधक वाक्य,
कर्मप्रयोग और भावप्रयोग, कर्मकर्तृ प्रयोग
पदबन्धात्मक शब्दरूप, निविष्ट वाक्य आदि, आदि ।

वाक्य को प्रमुख मानकर पहाड़ी भाषा का विश्लेषण करना अपेक्षता अधिक लाभदायक होगा । ध्वनि, रूप, रूपग्राम आदि का विश्लषण पहाड़ी भाषा को स्वनिष्ठ बनाने में सहायक सिद्ध नहीं हुआ है । वाक्य-अध्ययन दो स्तरों पर होना चाहिए, प्रत्येक उपभाषा का विवरणात्मक और फिर उपभाषाओं का परस्पर तुलनात्मक । वाक्यों की बनावट में आवृत्ति निकाल कर यह निर्णय निकाला जा सकता है कि वाह्य संसार के साथ सम्बन्ध स्थापित करने के कौन से ढंग अधिक निविष्ट और सफल रहे हैं ।

—हरि चन्द पराशर ।

P&SHPS—1902-ACL/75-28-1-76—700.

tharahkardu.in

tharahkardu.in